सुलभ-साहित्य-माला ★ उन्तालीसवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

विजया

(नाटक)

अनुवादकर्त्ता—

पं० रूपनारायण पाण्डेय

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई.

निवेदन

दत्ता (भा० १८) नामक उपन्यासका यह नाटकरूप है—विजया। इसे स्वयं शरत्‌बाबूने रूपान्तरित किया था और कलकत्तेके स्टार थियेटरमें यह बड़ी सफलताके साथ खेला गया था।

इसके पहले हम शरत्‌बाबूके रमा (ग्रामीण समाज) और षोड़शी (देना पावना) नामक दो नाटकोंको प्रकाशित कर चुके हैं। विराज बहूका नाटकरूप भी पाठकोंके समक्ष जल्दी ही उपस्थित किया जायगा।

—प्रकाशक

नाटक-पात्र

पुरुष

रासबिहारी — मृत बनमालीके मित्र और विजयाके अभिभावक
विलासबिहारी — रासबिहारीके पुत्र
नरेन्द्र (नरेन) — बनमाली और रासबिहारीके मित्र मृत जगदीशके पुत्र
दयाल — विजयाके मन्दिरके आचार्य
पूर्ण गांगुली — नरेन्द्रके मामा
कालीपद — विजयाका नौकर
परेश — ,, बालक नौकर
कन्हाईसिंह — ,, दरबान

ग्रामवासी, निमंत्रित भद्रजन, कर्मचारी आदि

स्त्री

परेशकी मा — विजयाकी दासी
विजया — बनमालीकी कन्या
नलिनी — दयालकी भानजी

दयालकी स्त्री, महिलाएँ और ग्रामवासिनी, आदि

विजया

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

स्थान— विजयाका बैठकखाना

विजया—जगदीश मुखर्जी क्या सचमुच छत परसे गिरकर मरे थे ?

विलास०—इसमें भी क्या कुछ सन्देह है ? शराबके नशेमें उड़ने चले थे।

विजया—कैसे दुःखकी बात है !

विलास०—दुःखकी क्यों है ? अपघातसे उनकी मौत न होगी तो और किसकी होगी ? जगदीश बाबू केवल आपके पिता स्वर्गीय बनमाली बाबूके ही सहपाठी बन्धु न थे, वह मेरे बाबूजीके भी बचपनके साथी और मित्र थे। लेकिन बाबूजी उनका मुँह भी नहीं देखते थे। वे मेरे पिताजीके पास दो बार रुपए उधार माँगने आये थे—पिताजीने उन्हें नौकरोंसे धक्के दिलाकर बाहर निकाल दिया था। बाबूजी हमेशा कहते हैं कि इन असच्चरित्र लोगोंको प्रश्रय या सहारा देनेसे मनुष्य मंगलमय भगवानके निकट अपराधी होता है।

विजया—यह तो सच है।

विलास०—मित्र हो, चाहे कोई हो, दुर्बलतावश किसी तरह समाजके चरम आदर्शको दूषित करना उचित नहीं। जगदीशकी सारी सम्पत्ति अब न्यायसे हमी लोगोंकी है। उनका लड़का पिताके ऋणको चुका सके तो अच्छा है; अगर न चुका सके तो हमें इसी घड़ी सब कुछ अपने हाथमें कर लेना

चाहिए। वास्तवमें छोड़ देनेका हमें अधिकार भी नहीं है। कारण, इन रुपयोंसे हम बहुत-से अच्छे काम कर सकते हैं। समाजके किसी होनहार लड़केको विलायत तक भेज सकते हैं—धर्मके प्रचारमें खर्च कर सकते हैं—न जाने कितना क्या कर सकते हैं। हम यह क्यों न करें, आप ही बताइए ? आपकी सम्मति पाते ही बाबूजी सब ठीक कर लेंगे।

(विजया कुछ इधर-उधर करने लगती है।)

विलास०—ना ना, मैं आपको किसी तरह टाल-मटोल न करने दूँगा! दुबिधा दुर्बलता पाप है—केवल पाप क्यों, महापाप है। मैंने मन ही मन संकल्प कर लिया है, आपके नामसे—जो कहीं नहीं है, जो कहीं नहीं हुआ—वही करूँगा। इस गँवईगाँवके बीच ब्रह्ममन्दिरकी स्थापना करके देशके इन अभागे मूर्खोंको धर्मकी शिक्षा दूँगा। आप एक बार जरा सोचकर देखिए, इन लोगोंकी अज्ञताके अत्याचारसे संकटमें पड़कर आपके पितृदेवको अपना गाँव—अपना घर छोड़ना पड़ा था कि नहीं ? उनकी कन्या होकर आपको क्या यह उचित नहीं है कि उस बदसलूकीका यह नोबुल (भद्रजनोचित) बदला लें, अर्थात् उनका यह चरम उपकार करें ? (विजया चुप रहती है) जरा सोचिए तो, देशमें आपका कितना बड़ा नाम होगा—कितनी बड़ी शोहरत होगी! सर्वसाधारणको स्वीकार करना होगा—और यह स्वीकार करानेका भार मुझपर है—कि हमारे समाजमें मनुष्य हैं, हृदय है, स्वार्थत्याग है। उन्होंने जिसे सताया, मानसिक पीड़ा पहुँचाई, और अपना घर-गाँव छोड़नेके लिए वाध्य किया, उसी महात्माकी महीयसी कन्याने केवल उन्हींके लाभके लिए यह इतना बड़ा स्वार्थत्याग किया। सारे भारतपर इसका कितना मॉरल एफेक्ट (नैतिक प्रभाव) पड़ेगा, जरा सोचकर तो देखिए!

विजया—यह तो है, लेकिन मुझे जान पड़ता है कि बाबूजीकी ठीक यही इच्छा नहीं थी। जगदीश बाबूको वे हमेशा मन ही मन प्यार करते रहे।

विलास०—ऐसा हो ही नहीं सकता। इस कुकर्मी शराबीको वह प्यार करते थे यह विश्वास मैं नहीं कर सकता।

विजया—इस बारेमें मैंने भी बाबूजीसे बहस की थी। उन्हींसे मैंने सुना है कि वह, आपके पिता और जगदीश बाबू—तीनों जनें केवल सहपाठी ही

नहीं, एक दूसरेके घनिष्ठ मित्र भी थे। जगदीश बाबू ही सबसे मेधावी छात्र थे, किन्तु जैसे दुर्बल थे, वैसे ही दरिद्र भी। बड़े होनेपर आपके पिता और मेरे पिताने ब्राह्मधर्म स्वीकार कर लिया, मगर जगदीश बाबू नहीं कर सके और गाँवमें इस धर्म-परिवर्तनके कारण निर्यातन शुरू हो गया। आपके पिता अत्याचार सहते हुए गाँवमें ही रह गये; लेकिन मेरे बाबूजीसे नहीं सहा गया। वे अपनी सारी जमीन जायदादकी देखरेखका भार आपके पिताको सौंपकर, माको लेकर, कलकत्ते चले आये और जगदीश बाबू अपनी स्त्रीको लेकर वकालत करनेके लिए पछाँहकी ओर चले गये।

विलास०—यह सब मैं भी जानता हूँ।

विजया—जानना ही चाहिए। पछाँहमें वह एक बड़े वकील हो गये। उनमें पहले कोई दोष नहीं था। केवल स्त्रीके मरनेके बाद ही उनकी दुर्गति शुरू हो गई।

विलास०—पर यह अक्षम्य अपराध है।

विजया—यह ठीक है। लेकिन इसके बहुत दिन बाद मेरी अपनी माके मरने पर मेरे बाबूजीने एक दिन एकाएक बातों ही बातोंमें कहा था—जगदीशने क्यों शराब पीना शुरू कर दिया था, यह मैं अब समझ सका हूँ विजया।

विलास०—कहती क्या हो? उनके मुखसे शराब पीनेका justification!

विजया—आप भी क्या कहते हैं विलास बाबू! यह जस्टीफिकेशन या समर्थन न था। इससे उन्होंने अपने बाल्य-बन्धुकी व्यथाके परिमाणकी ओर ही संकेत किया था। प्रतिष्ठा गई, कमाई गई, सब नष्ट करके वे देशको लौट आये।

विलास०—बड़ी कीर्त्ति कमाई!

विजया—सब गया, लेकिन जान पड़ता है, मेरे पिताके मनसे मित्रका स्नेह नहीं गया। इसीसे जब कभी जगदीश बाबूने रुपये माँगे, तब वे 'ना' नहीं कह सके।

विलास०—ऐसा होता तो ऋण न देकर दान भी तो कर सकते थे।

विजया—यह तो मैं नहीं जानती विलास बाबू। हो सकता है, उन्होंने दान करके मित्रके बचे हुए आत्मसम्मान-बोधको समाप्त न करना चाहा हो।

विलास०—देखिए, यह सब आपकी कवित्वकी बातें हैं। नहीं तो वे ऋण छोड़ देनेका उपदेश आपको दे जा सकते थे। वे आपसे अपने मित्रका ऋण माफ कर देनेके लिए क्यों नहीं कह गये?

विजया—यह मैं नहीं जानती। वह मुझे कोई भी आदेश देकर बंधनमें नहीं डाल गये। बल्कि बात चलने पर बाबूजी यह कहते थे कि बेटी, तुम अपनी धर्म-बुद्धिसे ही अपने कर्त्तव्यको जानो। मैं अपनी इच्छाके शासनसे तुम्हें न बाँध जाऊँगा। किन्तु मुझे जान पड़ता है कि पिताके ऋणकी अदायगीमें पुत्रको गृह-हीन करनेका उनका इरादा नहीं था। सुना है, जगदीश बाबूके लड़केका नाम नरेन्द्र है। आप जानते हैं, वह कहाँ हैं?

विलास०—जानता हूँ। शराबी बापकी तेरहीं करके वह अपने घरमें ही है। पिताके ऋणको जो अदा नहीं करता वह कुपुत्र है। उसपर दया करना अपराध है।

विजया—जान पड़ता है, आपसे उनकी जान-पहिचान है?

विलास०—जान-पहिचान! छिः—आप मुझे क्या समझती हैं बताइए तो? मैं तो यह सोच ही नहीं सकता कि जगदीश मुखर्जीके लड़केके साथ मेरी जान-पहचान या बातचीत हो सकती है। हाँ, उस दिन रास्तेमें अचानक एक पागल-जैसे नये आदमीको देखकर मुझे आश्चर्य अवश्य हुआ था। सुना, वही नरेन्द्र मुखर्जी है।

विजया—पागल-जैसे? लेकिन सुना है, वह तो डाक्टर हैं?

विलास०—डाक्टर! मैं तो विश्वास नहीं करता। जैसी आकृति वैसी ही प्रकृति; एक निकम्मा लोफर है!

विजया—अच्छा विलास बाबू, अगर जगदीश बाबूके घरपर हमलोग सचमुच कब्जा कर लें, तो गाँवमें क्या एक भद्दा गोलमाल न उठ खड़ा होगा?

विलास०—बिल्कुल नहीं। आप इधरके पाँच-सात गाँवोंमें एक आदमी भी ऐसा न पावेंगी, जिसे उस शराबीपर रत्तीभर भी सहानुभूति रही हो। उसके लिए 'हाय' करे, ऐसा कोई आदमी इस तरफ नहीं है।

(नौकर आकर चाय दे गया। क्षणभर बाद लौट आकर बोला—)

कालीपद—(नौकर) एक भले आदमी भेंट करना चाहते हैं।

विजया—उन्हें यहीं ले आओ। (नौकरका प्रस्थान)

विजया—मुझसे अब यह नहीं सहा जाता। लोगोंके आने जानेका ताँता लगा ही रहता है। इससे तो बल्कि कलकत्तेमें ही अच्छी थी।

(नरेन्द्रका प्रवेश)

नरेन्द्र—मेरे मामा पूर्णचन्द्र गांगुली महाशय आपके पड़ोसी हैं। वह बगलका घर उन्हींका है। मैं यह सुनकर अवाक् रह गया कि उनके बाप-दादोंके जमानेसे चली आ रही दूर्गापूजाको आप शायद अबकी बन्द कर देना चाहती हैं। यह क्या सच है? (इतना कहकर एक कुर्सी खींचकर उसपर बैठ जाता है।)

विलास०—इसीसे आप अपने मामाकी तरफसे झगड़ा करने आये हैं क्या? लेकिन आप किससे बातें कर रहे हैं, यह न भूलिएगा।

नरेन्द्र—जी नहीं, यह मैं नहीं भूला। और झगड़ा करने भी नहीं आया। बल्कि इस बातपर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए सच बात जाननेके लिए आया हूँ।

विलास०—विश्वास न होनेका कारण?

नरेन्द्र—कैसे विश्वास होता? निरर्थक अपने पड़ोसीके धर्म-विश्वासको चोट पहुँचाइएगा, यह विश्वास न होना ही तो स्वाभाविक है।

विलास०—आपको व्यर्थ मालूम होनेसे ही और किसीकी दृष्टिमें उसका कोई अर्थ नहीं रहेगा अथवा आपके धर्म कहनेसे ही दूसरे उसे शिरोधार्य कर लेंगे, इसका कोई हेतु नहीं है। मूर्तिपूजा हमारी दृष्टिमें धर्म नहीं है और उसे रोकनेको भी हम अन्याय नहीं मानते।

नरेन्द्र—(विजयासे) आप भी क्या यही कहती हैं?

विजया—मैं! मुझसे क्या आप इसके विरुद्ध मन्तव्य सुननेकी आशा करके आये हैं?

विलास०—(विजयाको लक्ष्य करके) लेकिन यह तो विदेशी आदमी हैं। बहुत संभव है, हमारे बारेमें कुछ भी नहीं जानते हों।

नरेन्द्र—(विजयासे) मैं विदेशी न होनेपर भी गाँवका आदमी नहीं हूँ, यह कहना ठीक है। तो भी मैंने सचमुच ही आपसे यह आशा नहीं की। मूर्तिपूजाकी बात आपके मुँहसे न निकलनेपर भी मैं साकार-निराकारका पुराना झगड़ा नहीं उठाऊँगा। आप लोग एक दूसरे समाजके हैं, यह मैं जानता हूँ। लेकिन यह तो वह बात नहीं है। गाँव-भरमें यही एक पूजा होती है। सब लोग

सालभर इसी दिनकी प्रतीक्षामें रहते हैं। आपकी प्रजा आपके बाल-बच्चोंकी तरह है। आपके आनेके साथ-साथ गाँवमें आनन्द-उत्सव सौगुना बढ़ जानेकी आशा ही तो सब लोग करते हैं। किन्तु ऐसा न होकर इतना बड़ा दुःख, इतना बड़ा निरानन्द भाव आप अपनी प्रजाके सिरपर लाद देंगी—यह विश्वास करना क्या सहज है? मैं तो किसी तरह विश्वास नहीं कर सका।

विलास०—आपने अनेक बातें कही हैं। हमारे पास इतना फालतू समय नहीं है कि हम आपसे साकार-निराकारकी बहस करें। सो वह चूल्हेमें जाय। आपके मामा एक क्यों, एक सौ पुतले बनवाकर घरमें बैठकर पूजा कर सकते हैं, उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। पर बहुत-से ढोल ताशे और घण्टा-घड़ियाल दिन-रात कानोंके पास पीटकर इन्हें असुस्थ अथवा परेशान करनेमें ही हमें आपत्ति है।

नरेन्द्र०—दिन-रात तो ये बाजे बजते नहीं। एक-दो बार अवश्य बजते हैं, सो सभी उत्सवोंमें कुछ-न-कुछ हुल्लड़-गुल्लड़ होता ही है। कुछ असुविधा ही सही। आप लोग माताकी जाति हैं। इन लोगोंके आनन्दके अत्याचारको आप नहीं सहेंगी तो कौन सहेगा?

विलास०—आपने तो काम निकालनेके लिए मा और बाल-बच्चोंकी उपमा दे दी, और वह सुननेमें भी अच्छी लगी। किन्तु मैं पूछता हूँ कि यदि आपके मामाके कानोंके पास मोहर्रमके बाजे पीटना शुरू कर दिया जाता, तो क्या उन्हें वह अच्छा लगता? खैर, वह चाहे जो हो, बकवाद करनेके लिए हमारे पास समय नहीं है। बापूने जो हुक्म दिया है वही होगा।

नरेन्द्र०—आपके बापू कौन हैं और उन्हें मना करनेका क्या अधिकार है, यह मेरा जाना नहीं है। लेकिन आपने यह जो मोहर्रमकी अद्भुत उपमा दे डाली सो कुछ समझमें नहीं आई। मैं कहता हूँ, यह रोशनचौकी न होकर अगर कुडुम-कुडुम-धुमका बाजा होता तो आप क्या करते, जरा सुनूँ? यह तो केवल निरीह स्व-जातिके ऊपर अत्याचारके सिवा और कुछ नहीं है।

विलास०—बापूके सम्बन्धमें तुम सावधान होकर बात करो, यह मैं कहे देता हूँ। नहीं तो अभी अन्य उपायसे तुमको बता दूँगा कि वह कौन हैं और उन्हें मना करनेका क्या अधिकार है।

नरेन्द्र—(विलासकी उपेक्षा करके विजयासे)—मेरे मामा बड़े आदमी नहीं हैं। उनका पूजाका आयोजन साधारण ही है। तो भी आपकी गरीब प्रजाका वर्षभरमें यही एक आनन्दोत्सव है। हो सकता है कि इससे आपको कुछ असुविधा हो; किन्तु उनका खयाल करके क्या इतना भी न सह सकेंगी ?

विलास०—(टेबिलपर एक प्रचंड घूसा मारकर) ना, नहीं सह सकतीं—एक सौ बार नहीं सह सकतीं ! कुछ मूर्ख लोगोंके पागलपनको बर्दाश्त करनेके लिए कोई जमींदारी नहीं करता। तुम्हें और कुछ कहनेको न हो तो जाओ—बेकार हम लोगोंका समय बरबाद न करो।

विजया—(विलाससे) आपके बापू मुझे लड़कीकी तरह प्यार करते हैं, इसीसे उन्होंने इन लोगोंकी पूजा मना कर दी है। लेकिन मैं कहती हूँ तीन-चार दिन कुछ हुल्लड़-गुल्लड़ होगा ही तो क्या हुआ—

विलास०—ओः—वह असह्य हुल्लड़ होगा। आप जानती नहीं हैं, इसीसे—

विजया—जानती क्यों नहीं। होने दो हुल्लड़, तीन दिनका ही तो मामला है। और मेरी असुविधाकी बात आप सोचते हैं, सो अगर कलकत्ता होता तो आप क्या कर लेते, बताइए तो ? वहाँ तो अगर कोई आठों पहर कानोंके पास तोपें दागता रहता, तो भी उसे चुपचाप सहना पड़ता। (नरेन्द्रसे) आप अपने मामासे कह दीजिए, वह हर साल जिस तरह पूजा करते हैं उसी तरह अबकी भी करें, मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं है। अच्छा तो बस, नमस्कार।

नरेन्द्र—धन्यवाद—नमस्कार, नमस्कार।

(दोनोंको नमस्कार करके प्रस्थान)

विजया—हमारी बातचीत तो समाप्त ही नहीं होने पाई। तो क्या ताल्लुका ले लेनेकी ही आपके बापूकी राय है ?

विलास०—हाँ।

विजया—लेकिन इसमें किसी तरहका कुछ गोलमाल तो नहीं है ?

विलास०—ना।

विजया—आज क्या वह उस बेला इधर आवेंगे ?

विलास०—कह नहीं सकता।

विजया—आप खफा हो गये क्या ?

विलास०—खफा न होने पर भी, पिताके अपमानसे पुत्रके मनमें क्षोभ होना शायद असंगत नहीं है।

विजया—किन्तु इसमें उनका अपमान हुआ, वह गलत खयाल आपके मनमें कैसे पैदा हुआ ? उन्होंने स्नेहवश होकर खयाल किया कि मुझे कष्ट होगा। लेकिन मुझे कष्ट नहीं होगा, यही तो मैंने उन भले आदमीको बतलाया। इसमें मान-अपमानकी तो कोई बात नहीं है विलास बाबू !

विलास०—वह तो बात ही नहीं है। अच्छी बात है, आप अपने स्टेटकी जिम्मेदारी लेना चाहती हैं तो लीजिए। लेकिन अब मुझे भी बापूको सावधान कर देना होगा; नहीं तो मेरे पुत्र-कर्तव्यमें त्रुटि होगी।

विजया—मैंने यह सोचा भी नहीं था कि इस साधारण बातको आप इस रूपमें लेकर इतना महत्त्व देंगे। अच्छी बात है, मेरी समझनेकी भूलसे अगर कोई अन्याय ही हो गया हो, तो मैं अपराध स्वीकार करती हूँ। आइंदा ऐसा फिर न होगा।

विलास०—तो फिर पूर्ण गांगुलीको यह सूचित कर दीजिए कि रासविहारी बाबूने जो हुक्म दिया है उसे आप उलट नहीं सकतीं।

विजया—यह क्या बहुत अधिक अन्याय न होगा ? अच्छा मैं आप ही चिट्ठी लिखकर आपके पिताजीकी अनुमति माँगे लेती हूँ।

विलास०—अब अनुमति लेना—न लेना दोनों बराबर हैं। आप अगर बापूको सारे गाँवके उपहासका पात्र बना डालना चाहती हैं तो मुझे भी अपने अत्यन्त अप्रिय कर्त्तव्यका पालन करना होगा।

विजया—(अपने ऊपर संयम करके) वह अप्रिय कर्त्तव्य क्या है, जरा सुनूँ ?

विला०—यही कि आपके जमींदारी-शासनके बीच वह अब हाथ न डालें।

विजया—आप क्या यह समझते हैं कि वह आपके मना करनेको सुनेंगे ?

विलास०—कमसे कम वही चेष्टा मुझे करनी होगी।

विजया—(क्षणभर मौन रहकर) अच्छी बात है ! आपसे जो हो सके वह कीजिएगा; किन्तु दूसरोंके धर्म-कर्ममें मैं बाधा नहीं डाल सकूँगी।

विलास०—आपके पिता लेकिन यह कहनेका साहस न करते।

विजया—(कुछ रूखे स्वरमें) अपने पिताके बारेमें मैं आपकी अपेक्षा बहुत अधिक और अच्छी तरह जानती हूँ विलास बाबू। लेकिन इस बातको लेकर बहस करना बेकार है—मेरे स्नानका समय हुआ, मैं जाती हूँ। (जानेके लिए उठ खड़ी होती है।)

विलास०—औरतोंकी जाति ऐसी ही नमकहराम होती है।

[विजयाने जानेके लिए पैर बढ़ाया ही था कि बिजलीकी तड़पके वेगसे घूमकर खड़ी हो गई। पलभर विलासके प्रति दृष्टिपात करके चुपचाप वहाँसे चल दी। इसी समय वृद्ध रासविहारी धीरे धीरे प्रवेश करते हैं और उन्हें देखते ही पुत्र उछल पड़ता है—]

विलास०—बापू, तुमने सुना अभी जो कुछ हुआ? पूर्ण गांगुली अबकी भी ढोल-ताशे घण्टा-घड़ियाल बजाकर दुर्गापूजा करेगा, उसे मना नहीं किया जा सकेगा। अभी उसका कोई भानजा प्रतिवाद करने आया था। विजयाने उसे हुक्म दे दिया है कि पूजा हो।

रास०—तो इससे तुम इतने आग-बबूला क्यों हो उठे?

विलास०—आग-बबूला न होऊँ? विजया तुम्हारे हुक्मके खिलाफ हुक्म दे, और मेरे रोकने पर भी?

रास०—तो क्या तुमने इसी बातपर उससे बिगाड़ कर लिया?

विलास०—लेकिन उपाय ही क्या था? आत्मसम्मान बनाए रखनेके लिए—

रास०—देखो भैया, अपना यह आत्मसम्मान-बोध कुछ दिनके लिए थोड़ा काम कर लो, नहीं तो अब मुझसे सँभाला न जायगा। ब्याह हो जाने दो, फिर जी भरकर आत्मसम्मानको बढ़ा देना; मैं मना नहीं करूँगा।

(विजयाका प्रवेश)

रास०—लो विजया बेटी आ गई!

विजया—आपको आते देखकर मैं लौट आई काका बाबू। सुनकर शायद आप नाराज होंगे, लेकिन केवल तीन ही दिनकी तो बात है, होने दीजिए हुल्लड़-गुल्लड़—मैं अनायास उसे सह सकूँगी; गांगुली महाशयकी पूजाको रोकनेकी जरूरत नहीं है। मैंने अनुमति दे दी है।

रास०—यही बात तो विलास मुझे समझा रहा था। बूढ़ा आदमी ठहरा,

सुनकर एकाएक चंचल हो उठा था कि भविष्यमें फिर ऐसा होनेसे तो काम नहीं चलेगा। तब आत्मसम्मानकी रक्षाके लिए मुझे अपनेको तुम्हारी जायदाद और जमींदारीसे अलग करना ही होगा। किन्तु विलासकी बातोंसे मेरे मनकी खीझ जाती रही बेटी। समझ लिया, वे अज्ञानी हैं, करें पूजा। बल्कि परायेके लिए दुःख सहना ही महत्त्व है। इस विलासकी प्रकृति भी अद्भुत है। इसके वचन और कामकी दृढ़ता देखकर कोई यह नहीं समझ पाता कि इसका हृदय इतना कोमल है। खैर, इसे जाने दो। वह जगदीशका मकान जब तुमने समाज (ब्राह्म समाज) को ही दान कर दिया है, तो अब देर न करके, इन छुट्टीके दिनोंमें ही उसकी सब तैयारी पूरी कर डालनी होगी। तुम्हारी क्या राय है ?

विजया—आप जो अच्छा समझेंगे, वही होगा। रुपए अदा करनेकी उनकी मियाद तो खतम हो गई है ?

रास०—बहुत दिन हुए। शर्त आठ सालकी थी; पर अब यह नवाँ साल बीत रहा है।

विजया—सुनती हूँ, उनके पुत्र यहीं हैं। उन्हें बुलाकर और भी थोड़ी मुद्दत देना क्या ठीक न होगा ? शायद कोई उपाय कर सकें।

रास०—(सिर हिलाते हुए) नहीं कर सकेगा—नहीं कर सकेगा—कर सकता तो—

विलास०—अगर वह रुपयोंका कुछ इन्तजाम कर भी ले, तो हम क्यों देंगे ? रुपए लेते समय उस शराबीको होश न था कि क्या शर्त की है ? इसे कैसे अदा करूँगा ?

[विजयाने विलासविहारीकी ओर एक बार दृष्टिपात करके रासबिहारीके मुखकी ओर देखते हुए शान्त, किन्तु दृढ़ कण्ठसे कहा—]

विजया—वह बाबूजीके मित्र थे। उनके सम्बन्धमें वे सम्मानके साथ बात करनेकी आज्ञा मुझे दे गये हैं !

विलास०—(गरजकर) हजार आज्ञा देनेपर भी वह एक—

रास०—आहा, चुप रहो न विलास ! पापके प्रति तुम्हारी आन्तरिक घृणा पापीके ऊपर न जा पड़े, इसका खयाल रखो। इसी जगह तो आत्मसंयमका सबसे अधिक प्रयोजन है भैया।

विलास०—नहीं बापू, ये सब फिजूल सेण्टिमेंट (Sentiment=मनोभाव) मैं किसी तरह बर्दाश्त नहीं कर सकता, सो इसके लिए चाहे कोई क्रोध करे या कुछ भी करे। मैं सच बात कहनेमें नहीं डरता, सत्य काम करनेसे पीछे नहीं हटता।

रास०—सो तो ठीक है। तुमको ही भला मैं क्या दोष दूँ? अपने वंशका मेरा यह स्वभाव बूढ़े होने पर भी अभी तक नहीं गया! अन्याय अधर्म देखते ही जैसे देहमें आग लग जाती है। समझीं न बेटी विजया, मैं और तुम्हारे पिता, दोनों इसी कारण सारे गाँवके विरुद्ध सत्य धर्म ग्रहण करनेमें नहीं हिचके,—नहीं डरे। जगदीश्वर, तुम्हीं सत्य हो! (यह कहकर दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगाकर जगदीश्वरको प्रणाम किया।) किन्तु देखो बेटी, मैं कुछ भी होऊँ, फिर भी तृतीय व्यक्ति हूँ। तुम दोनोंके मतभेदके बीच मेरा बोलना उचित नहीं है। कारण, किससे तुम लोगोंका भला होगा, यह आज नहीं तो कल तुम्हीं लोग ठीक कर सकोगे। इस बूढ़ेके मतामतकी आवश्यकता न होगी। लेकिन अगर बात कहनी पड़े तो कहना ही होगा कि इस मामलेमें तुम ही भूल कर रही हो। जमींदारी चलानेके काममें मुझे भी विलासके आगे हार माननी होती है, यह मैं बहुत दफे देख चुका हूँ। अच्छा, तुम्हीं बताओ भला, किसको ज्यादा गरज है? हम लोगोंको या जगदीशके लड़केको? कर्ज चुकानेका बूता ही अगर होता तो एक बार आप आकर क्या वह कोशिश करके न देखता? उसे तो मालूम है कि तुम यहाँ आई हो। अब हम ही अगर उपयाचक होकर उसे बुला भेजें तो वह निश्चय ही बहुत लंबी मुद्दत चाहेगा। उसका फल केवल यही होगा कि देना भी न चुकता होगा और तुम लोगोंका यहाँ ब्रह्मसमाजकी स्थापनाका संकल्प भी सदाके लिए समाप्त हो जायगा। अच्छी तरह सोचकर देखो तो बेटी, यही क्या ठीक नहीं है? फिर उससे छिपाकर तो कुछ हो नहीं सकेगा! तब वह खुद आकर कुछ समय माँगे, तो न हो उसपर विचार करके देखा जायगा! क्यों बेटी, तुम क्या कहती हो?

विजया—(अप्रसन्न मुखसे) अच्छा। काका बाबू, मुझे बड़ी देर हो गई। अब क्या मैं जा सकती हूँ?

रास०—जाओ बेटी, जाओ; मैं भी जाता हूँ।

(विजयाका प्रस्थान ।)

विलास० —(क्रोधके साथ) वह अगर दस वर्षकी मुद्दत माँगे, तो भी उसपर विचार करना होगा क्या ?

रास०—(क्रुद्ध, दबी हुई आवाजमें) करना न होगा तो क्या सब खो देना होगा ? ब्राह्म मन्दिरकी प्रतिष्ठा ! देख विलास, इस लड़कीकी अवस्था अधिक नहीं है, लेकिन अच्छी तरह जानती है कि वही अपने बापकी सारी सम्पत्तिकी स्वामिनी है, और कोई नहीं । मन्दिरकी स्थापना न होनेपर भी कोई हानि न होगी, लेकिन मेरी बात भूलनेसे काम नहीं चलेगा । (प्रस्थान)

(कालीपदका प्रवेश)

कालीपद—माजीने पूछा है कि आपके लिए क्या चाय भेज दें ?

विलास०—ना ।

कालीपद—या शरबत—

विलास०—ना, कोई जरूरत नहीं है ।

कालीपद—फल या कुछ मिठाई ?

विलास०—कह तो दिया, कुछ न चाहिए । उनसे कह देना, हम घर जा रहे हैं । (प्रस्थान)

काली०—कहना न होगा, वे जाते ही जान जायँगी । (प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—गाँवका रास्ता

(पूर्ण गांगुली और दो-तीन ग्रामवासियोंका प्रवेश)

१ ब्राह्मण हाँ पूर्ण चाचा, सुना है, पूजा करनेका हुक्म मिल गया ?

पूर्ण—हाँ भैया, जगदम्बाने दया-दृष्टिसे देख लिया । जमींदारके घरसे हुक्म मिल गया है कि पूजा करनेके बारेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं है ।

१ ब्राह्मण—जबसे सुना कि पूजा रोक दी गई है, तबसे दुश्चिन्ताकी सीमा न थी चाचा । सभी सोच रहे थे कि तुम्हारे यहाँकी इतने दिनोंकी पुरानी पूजा शायद अबकी बन्द हो जायगी ।—हुक्म दिया किसने चाचा ?

पूर्ण — जमींदारकी कन्याने स्वयं। यह सब मामला उन्हें कुछ भी मालूम न था। हमारे नरेन्द्रने जाकर कहा तो सुनकर आश्चर्यके साथ उन्होंने कहा— यह कैसी बात है! आप अपने मामासे जाकर कह दीजिए कि वह सदाकी तरह विधिपूर्वक मैयाकी पूजा करें। मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं है।—अरे यह सब उन्हीं दोनों बदजात बाप-बेटोंकी कारसाजी थी। मुझसे वे जलते हैं।

१ ब्रा०—तो यह कहो कि लड़की बहुत भली है?

२ ब्रा० — हूँः, भली है! म्लेच्छ विधर्मी! मैं पूछता हूँ, तुमको कुछ पता है?

पूर्ण०—होगी म्लेच्छ। लेकिन भैया, तब भी राय-वंशकी लड़की है — हरि रायकी पोती! सुना है, इस विलास छोकरेने पूजा बन्द करनेकी बड़ी चेष्टा की थी, किन्तु उन्होंने उसकी कोई बात नहीं सुनी। स्पष्ट कह दिया कि हजार असुविधा होनेपर भी मैं पराये धर्म-कर्ममें हस्तक्षेप नहीं कर सकूँगी।—यह क्या सहज बात है?

१ ब्रा०—कहते क्या हो चाचा? पहले जिस दिन जूता-मोज़ा पहनकर फिटनपर चढ़कर गाँवमें आई, तो लोग देखकर भयसे अधमरे हो गये। अफवाह फैल गई कि इसीके साथ विलास बाबूका ब्याह होनेवाला है, इसीसे गाँवमें आई है। सभीने मनमें सोचा कि अकेले रामसे ही जान नहीं बचती, उसपर साथमें यह सुग्रीव भी! अब कोई नहीं बचेगा, यह दढ़ियल (रासविहारी) साला सभीको पकड़ पकड़कर फाँसीपर चढ़ा देगा। किन्तु तुम्हारा यह मामला देखकर बचनेका भरोसा होता है क्यों न चाचा?

पूर्ण—हाँ भैया, होता है। मैं कहता हूँ, आगे चलकर तुम लोग देख लेना—इस लड़कीके मनमें दया-धर्म है। यह किसीको सहजमें दुःख नहीं देगी।

२ ब्रा० —फिजूल —फिजूल—सब फिजूल बात है। अरे वह विधर्मी है! शास्त्रने जिसे म्लेच्छ कहा है, उसके दया! उसके धर्म! कहाँसे आया?

१ ब्रा०—सो तो ठीक है। शास्त्रका वाक्य सहजमें मिथ्या नहीं होता। किन्तु चाचाकी पूजा तो मा लक्ष्मीने अपने जोरसे चला दी। बाप-बेटा दोनों हजार चेष्टा करके भी उसे बन्द नहीं कर पाये।

२ ब्रा०—(सिर हिलाकर) लेकिन तुम लोग बादको देखना, यह जूता-मोजा पहननेवाली म्लेच्छ लड़की सारे गाँवको जलाकर खाक करके छोड़ेगी। मैं यह स्पष्ट देख पा रहा हूँ।

पूर्ण--क्या जाने भैया, हमारे नरेन्द्रने तो साहस देकर कहा है कि कोई डर नहीं है; वह किसीको कष्ट नहीं देगी। महामायाने भाग्यमें जो लिखा है वह तो होगा ही।—खैर, तुम सब लोग यह पूजाका काम देखो भैया। मैं यही चाहता हूँ कि तुम सब मिलकर मेरा यह काम बना दो।

२ ब्रा०—देखो चाचा, हम सभी मिलकर तुम्हारे इस काममें लग जायँगे—तुम्हें किसी ओर देखना न होगा।

१ ब्रा० – माताकी पूजा कुशल-क्षेमसे निपट जाय। इसके बाद चाचा, तुमको भी हम लोगोंकी थोड़ी-सी सहायता करना होगी। तुम्हें और नरेन्द्रको साथ लेकर, मौका देखकर, एक दिन हम लोग दल बाँधकर पहुँच जायँगे जमींदारके यहाँ। कहेंगे कि मा, ग्राम–देवता सिद्धेश्वरीका पोखर आप छोड़ दीजिए। बूढ़े सालेने डरा–धमका कर जबर्दस्ती उसपर कब्जा कर लिया है। लेकिन साल-दरसाल जो उससे निकलनेवाली मछलियाँ सौ रुपयेकी बिकती हैं उन रुपयोंमेंसे कितने रुपए सरकारी तहबीलमें जमा होते हैं, इसका जरा पता लगाइए। मुझे इसकी खबर है चाचा, इन छः-सात बरसोंमें एक पैसा भी नहीं जमा किया गया। तब देखूँगा, बूढ़ा इसका क्या जवाब देता है।

२ ब्रा०—तब बूढ़ा कह देगा कि यह बात झूठ है। मछली बेची नहीं जातीं।

१ ब्राह्मण – यह कहे तो जरा। गरीटीके झोड़ो मछुएको मैं जानता हूँ। उसके पुरोहितसे मेरी बड़ी मित्रता है। उसकी गवाहीसे मैं प्रमाणित कर दूँगा कि हमारा कहना झूठ नहीं है। यह झोड़ो मछुआ ही बूढ़ेके हाथमें सौ रुपए देकर हरसाल कलकत्ते मछलियाँ भेजता है।

पूर्ण – मगर मुझे इस मामलेमें न घसीटो भैया। घरके पास ही घर है। मैं गरीब आदमी ठहरा—मुफ्तमें मारा जाऊँगा।

१ ब्रा०—किन्तु तुम्हारा भानजा नरेन्द्र कभी नहीं डरेगा, यह मैं कह सकता हूँ। उसे भेजूँगा, साथमें हम लोग रहेंगे। तुम क्या यह सोचते हो कि दिघड़ाके इतने लोगोंके इतने काम वह कर देता है, और हम लोगोंका इतना उपकार न करेगा? निश्चय ही करेगा।

२ ब्रा०—तो इसके साथ ही मेरे बड़े जमाईके बबूलेवाले मैदानकी खबर भी उसे सुना देना भाई—कम जमीन नहीं है, साढ़े तीन बीघे है। जमाई रहा नहीं;

देखने-सुननेवाला कोई है नहीं। लड़की मेरे पास चली आई। तीन-चार सालका लगान बाकी हो गया। इसके बाद किसीको खबर नहीं हुई कि कब वह मैदान कुर्क हो गया और कब नीलामपर चढ़ गया। जब मालूम हुआ तब जाकर मैंने कितनी खुशामद की, हाथ-पैर जोड़े; मगर इतना बड़ा बदजात यह बूढ़ा है कि किसी तरह उसे नहीं छोड़ा।

पूर्ण—बाबूके घरके उत्तर ओर वह जो नया कलमी आमका बाग लगाया गया है, वही न?

२ ब्रा०—हाँ चाचा, वही अब बूढ़ेके शौककी आमकी बगिया है।

पूर्ण—लेकिन यह तो नीलाममें खरीदी हुई जमीन है। इसे तो कोई छोड़ नहीं सकेगा भैया।

२ ब्रा०—न छोड़ सके। इसकी आशा भी मैं नहीं करता। लेकिन बूढ़ा साला दो दिन बाद ससुर होगा कि नहीं। इसीसे कहता हूँ कि समय रहते ससुरके गुण-दोष थोड़े बहुत मा-लक्ष्मी सुन रखें।

१ ब्रा०—जगदीश मुखर्जीका मकान भी तो सुना है, बूढ़ा हथिया लेना चाहता है।

पूर्ण—कानाफूसीमें यही तो सुन रहा हूँ भैया।

२ ब्रा०—ऐसा कोई हो जो इस बदजात बूढ़ेकी दाढ़ीको एक झटकेमें उखाड़ ले, तो मेरे हृदयकी जलन मिटे।

पूर्ण—रहने दो भैया, रहने दो। राहके बीच खड़े होकर ये सब बातें करनेकी जरूरत नहीं। कोई कहीं सुन लेगा और जाकर कह देगा तो मेरी जान नहीं बचेगी।

२ ब्रा०—नहीं चाचा, सुनेगा और कौन? यहाँ तो हमीं तीन आदमी हैं। खैर जाने दो ये सब बातें, देर हुई। चलो, अब घर जला जाय।

पूर्ण—हाँ चलो भैया। सुधीर, सन्ध्याके बाद मेरे यहाँ जरा आना। अब अधिक समय नहीं है—तुम लोगोंसे कुछ सलाह करनी होगी।

१ ब्रा०—सन्ध्याके बाद ही आऊँगा चाचा। चलो, अब घर चला जाय।

(सबका प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—सरस्वती नदीका किनारा

[शरद् ऋतुके अन्तकी शीर्ण संकीर्ण सरस्वती नदी है। उसके दूसरे किनारेपर लंबा-चौड़ा मैदान है। इधरके किनारेपर लताओं और झाड़ियोंसे भरा हुआ घना जंगल है। जंगलकी आड़में दिघड़ा गाँव है। नदीके ऊपर छोटा-सा बाँसोंका बना पुल है, जो दोनों किनारोंको जोड़ता है। नदीतटसे एक पगडण्डी जंगलके भीतर होकर दिघड़ा गाँव तक चली गई है। इन सब चीजोंकी आड़में नरेन्द्रके बड़े पक्के मकानका कुछ हिस्सा भर दिखाई देता है। नदीके किनारे बैठा हुआ नरेन्द्र छीपसे मछली पकड़नेमें लगा है। विजया और कन्हाई-सिंहका प्रवेश।]

विजया—इसी नदीके किनारे ही दिघड़ा है न कन्हाईसिंह ?

कन्हाई०—हाँ माजी।

विजया—इसी गाँवमें जगदीश बाबूका घर है ?

कन्हाई०—हाँ माजी, बहुत बड़ी इमारत है।

विजया—इसी पुलपर होकर शायद उस गाँवमें जाना होता है ?

[विजया पुलके पास जाती है। नरेन्द्रकी नजर उसपर पड़ जाती है।]

नरेन्द्र—आइए आइए, नमस्कार। तीसरे पहर थोड़ा घूमने-फिरनेके लिए यह नदीका किनारा कुछ बुरी जगह नहीं है। लेकिन आज-कलके दिनोंमें मलेरियाका डर भी कम नहीं है। इस बारेमें शायद किसीने आपको सावधान नहीं किया ?

विजया—नहीं। लेकिन मलेरिया तो आदमी पहचानकर आक्रमण नहीं करता। मैं तो बल्कि बिना जाने यहाँ आई हूँ, लेकिन आप तो जान-बूझकर पानीके किनारे बैठे हैं! देखूँ, कौन सी मछली आपने पकड़ी है ?

नरेन्द्र—(पुलके दूसरे छोरसे) पूँटी और वह भी दो घण्टेमें सिर्फ दो मिली हैं। मजूरी नहीं पोसाई। लेकिन समय तो किसी तरह काटना है।

विजया—लेकिन अपने मामाकी पूजाके अवसरपर सहायता न करके खूब जान बचाते फिर रहे हैं आप ? इन दो पूँटी मछलियोंसे तो उनकी सहायता न होगी।

नरेन्द्र—(हँसकर) ना। लेकिन एक तो मैं मामाके घर नहीं आया, दूसरे उनकी सहायता करनेके लिए और बहुत-से लोग हैं—मेरी जरूरत नहीं है।

विजया—मामाके घर नहीं आये? तो फिर यहाँ कहाँ रहते हैं?

नरेन्द्र—घर मेरा दिघड़ा गावमें है। इसी बाँसके पुलसे वहाँ जाना होता है।

विजया—दिघड़ामें? तो आप नरेन्द्र बाबूको जानते होंगे! बता सकते हैं कि वह कैसे आदमी हैं?

नरेन्द्र—ओह—नरेन्द्र? उसका घर तो आपने अपना ऋण चुकानेके लिए खरीद लिया है न? अब उसके बारेमें खोज-खबर लेनेसे क्या लाभ? जिस उद्देश्यसे आपने वह घर लिया है, सो भी इस तरफके सब लोगोंने सुन लिया है।

विजया—शायद इस तरफ यही बात फैल गई है कि मकान एकदम ले लिया गया है?

नरेन्द्र—फैलनी ही चाहिए। जगदीश बाबूका सर्वस्व आपके बाबूजीके पास मियादी बिक्री कबालेपर बंधक था। उतने रुपए चुकाना उनके लड़केके बूतेकी बात नहीं है। और फिर मियाद भी बीत गई है। यह बात सब लोग जानते हैं।

विजया—आप स्वयं जब उसी गाँवके आदमी हैं, तब सब खबर आपको होनी ही चाहिए।—अच्छा, सुना है, नरेन्द्र बाबू विलायतसे नामवरीके साथ डाक्टरी पास करके आये हैं। किसी अच्छी जगह प्रैक्टिस शुरू करके, और कुछ समय माँगकर, क्या वह बापका कर्ज नहीं चुका सकते?

नरेन्द्र—यह संभव नहीं। सुना है, प्रैक्टिस करनेका उसका विचार ही नहीं है।

विजया—तो फिर क्या करनेका विचार है? इतना खर्च करके विलायत गये और कष्ट उठाकर डाक्टरी सीखी। उसका और फल ही भला क्या हो सकता है? एकदम अपदार्थ हैं!

नरेन्द्र—अपदार्थ? (हँसकर) ठीक समझा आपने। जान पड़ता है, यही उसका असल रोग है। मगर सुनाई पड़ रहा है कि वह स्वयं चिकित्सा करनेकी अपेक्षा ऐसा कुछ आविष्कार कर जाना चाहता है, जिससे बहुत लोगोंका उपकार

होगा। मुझे खबर मिली है कि इसके लिए वह मेहनत भी खूब करता है।

विजया—अगर यह सच है तो बेशक बहुत बड़ी बात है। किन्तु घर-द्वार चले जाने पर वह यह सब कैसे करेंगे? तब तो उन्हें कोई रोजगार करना ही चाहिए। अच्छा, आप तो यह निश्चय ही बता सकते हैं कि विलायत-यात्रा करनेके कारण यहाँके लोगोंने उनको समाजके बाहर कर दिया है कि नहीं।

नरेन्द्र—सो तो निश्चय ही लोगोंने उसका बहिष्कार कर रखा है। मेरे मामा पूर्ण बाबू उसके भी एक तरहसे आत्मीय हैं, तो भी पूजाके दिनोंमें वह उसे अपने यहाँ बुलानेका साहस नहीं कर सके! किन्तु इससे उसकी कोई हानि नहीं हुई। वह अपने काम-काजमें डूबा रहता है। उससे समय बचता है तो चित्र बनाता है और घरसे बहुत कम बाहर निकलता है।

कन्हाई०—माजी, सन्ध्या होनेको है, घर लौटते रात हो जायगी।

नरेन्द्र—हाँ, बातों ही बातोंमें सन्ध्या हो आई।

विजया—तो यह कहिए कि घर चला जानेपर किसी आत्मीय या नातेदारके घरमें भी उनके आश्रय पानेकी आशा नहीं है?

नरेन्द्र—बिल्कुल ही नहीं।

विजया—(क्षणभर चुप रहकर) वह तो किसीके पास जाना ही नहीं चाहते—नहीं तो इसी महीनेके अन्तमें तो उन्हें मकान छोड़ देनेका नोटिस दिया गया है। और कोई होता तो कमसे कम मुझसे ही एक बार मिलनेकी चेष्टा करता।

नरेन्द्र—हो सकता है कि उसे जरूरत न हो, अथवा सोचता हो कि इससे लाभ क्या है? आप तो सचमुच ही उसे उसके घरमें रहने नहीं दे सकतीं?

विजया—हमेशाके लिए न सही, और कुछ दिन तो रहने दिया जा सकता है। लेकिन जान पड़ता है, आपसे उनकी विशेष जान-पहचान है। क्यों, सच है न?

नरेन्द्र—लेकिन देखिए, इधर शाम होती आ रही है।

विजया—आवे।

नरेन्द्र—आवे! मतलब यह कि गाँवके प्रति आपका सच्चा आकर्षण है।

विजया—इसके माने?

नरेन्द्र—माने यही कि सन्ध्या-बेलामें यहाँ खड़े रहकर गाँवके मलेरिया तकको अपनाये विना आपका मन नहीं मानता।

विजया—(हँसकर) ओह, यह बात है! लेकिन गाँव तो आपका भी है? जान पड़ता है, मलेरियाको आप अपना चुके हैं। लेकिन मुँह देखकर तो ऐसा नहीं जान पड़ता।

नरेन्द्र—डाक्टरोंको जरा सब्र करके लेना होता है।

विजया—आप डाक्टर हैं क्या?

नरेन्द्र—हाँ डाक्टर जरूर हूँ, लेकिन बहुत छोटा डाक्टर हूँ।

विजया—तो आप केवल पड़ोसी ही नहीं हैं—उनके व्यवसाय-बन्धु भी हैं। उनके सम्बन्धमें जो बातें मैं कह रही हूँ, वे सब आप उनसे जाकर कहेंगे—क्यों न?

नरेन्द्र—(हँसकर) क्या कहूँगा? यही तो कहूँगा कि आपने कहा है कि वह तो एक अपदार्थ और अभागा आदमी है? आप कुछ चिन्ता न करें—वह तो बहुत पुरानी बात है; सभी लोग उसे ऐसा कहते हैं। नये सिरेसे कहनेकी जरूरत नहीं है—यह कोई नई बात नहीं है। मगर हाँ, कहनेसे शायद किसी दिन आपसे मिलनेके लिए जा सकता है।

विजया—मुझसे मिलकर उन्हें क्या लाभ होगा?—लेकिन उनके सम्बन्धमें तो मैंने ठीक ऐसी बात आपसे नहीं कही।

नरेन्द्र—न कहनेपर भी, कहना चाहिए था।

विजया—कहना चाहिए था? क्यों?

नरेन्द्र—कर्ज चुकानेमें जिसका रहनेका घरतक, जिसका सर्वस्व तक, बिक जाय, उसे सभी अभागा कहते हैं। हम लोग भी कहते हैं। सामने न कह सकनेपर भी पीठ-पीछे कहनेमें बाधा क्या है?

विजया—(हँसकर) आप तो उनके बड़े अच्छे मित्र हैं!

नरेन्द्र—(गर्दन हिलाकर) हाँ, अभिन्न भी कहा जा सकता है। यहाँ तक कि उसकी ओरसे मैं खुद ही आपसे सिफारिश करता, अगर यह न जानता कि आप एक अच्छे मतलबसे ही उसके घरको ले रही हैं।

विजया—अच्छा, क्या आप अपने मित्रसे एक बार रासबिहारी बाबूके पास जानेके लिए नहीं कह सकते?

नरेन्द्र—लेकिन उनके पास क्यों ?

विजया—वही तो बाबूजीकी जायदादका प्रबन्ध और देखभाल करते हैं।

नरेन्द्र—सो मैं जानता हूँ। लेकिन उनके पास जानेसे कोई लाभ नहीं। सन्ध्या हो गई। अच्छा अब चलता हूँ। नमस्कार।

[नरेन्द्र पुल पार होकर जंगलके भीतर अदृश्य हो गया। विजया उसी ओर ताकती रही।]

कन्हाई०—यह बाबू कौन हैं माजी ?

विजया—(चौंककर मनमें कहा)—कौन हैं, सो तो नहीं जानती। वह जिनके यहाँ पूजा हो रही है, उन्हींके भानजे हैं।

(रासविहारीका प्रवेश)

रास०—तुम्हींको खोज रहा था बेटी। मालूम हुआ कि तुम नदीकी तरफ जरा टहलने आई हो। अच्छी बात है—उसे हमने नोटिस दिया है, और फिर हमीं उसे खारिज करने लगें, तो यह काम तुम्हारी और प्रजाकी नजरमें कैसा जँचेगा, यह तो जरा सोचकर देखो।

विजया—एक चिट्ठी लिखकर उनके पास भेज दीजिए न। मुझे निश्चय ही जान पड़ता है कि वह सिर्फ अपमानके डरसे ही यहाँ आनेका साहस नहीं करते।

रास०—(व्यंग्यके स्वरमें) देखता हूँ, महामानी आदमी है। इसीसे अपमान सिर पर लादकर हम लोगोंको ही उपयाचक होकर उसे चिट्ठी लिखनी होगी कि मेहरबानी करके वह अभी घर न छोड़ें !

विजया—(कातर भावसे) इसमें कोई दोष नहीं है काका बाबू। अयाचित दया करनेमें लज्जाका कोई कारण नहीं है।

रास०—(जरा हँसकर) बेटी, अपनी चीज तुम दान करोगी तो उसमें विघ्न मैं क्यों डालूँगा ? मैंने तो केवल यही दिखाना चाहा था कि विलासने जो करना चाहा था, वह न स्वार्थके कारण था और न किसीपर क्रोधके कारण—केवल कर्त्तव्य समझकर ही करना चाहा था। एक दिन मेरी जायदाद और तुम्हारे पिताकी जायदाद सब मिलकर तुम्हीं दोनों जनोंके हाथमें आवेगी। उस दिन बुद्धि देनेके लिए इस बूढ़ेको तुम ढूँढ़े न पाओगी बेटी।

(विलासबिहारीका प्रवेश)

[विलासबिहारी विलायती पोशाकमें है। हाथमें छोटा-सा हैंडबेग हैं। अत्यन्त व्यस्त भाव है।]

विलास०—तुम लोग यहाँ हो!—बापू, अभी तक घर जानेका अवकाश नहीं मिला। कलकत्तेसे लौटते ही सुना कि तुम लोग नदीके किनारे टहलने आये हो। मगर टहलना! इतना बड़ा कार्य-भार सिरपर लेकर कैसे आदमी आलस्यमें समय गँवा सकता है, मैं यही सोचता हूँ। बापू, मैं एक तरहसे सभी काम प्रायः समाप्त कर आया हूँ। किन लोगोंको बुलाना होगा, किनको उस दिनके कामका भार सौंपना होगा, क्या क्या करना होगा—सब।

रास०—सब? कहते क्या हो! इसी बीचमें यह सब कैसे कर डाला तुमने?

विलास०—हाँ सब। मुझे क्या नहाने खानेका होश था!—विजया, तुम निश्चय ही सोचती होगी कि मैं इतने दिन नाराज होकर नहीं आया। यद्यपि मैंने क्रोध नहीं किया; लेकिन अगर करता भी तो वह कुछ अन्याय न होता।

रास०—कन्हाईसिंह, चलो तो भैया, जरा आगे कुछ दूर तक घूम आऊँ। बहुत दिनोंसे नदीकी तरफ आ ही नहीं सका हूँ।

कन्हाई०—चलिए हुजूर! (रासविहारी और कन्हाईसिंहका प्रस्थान।)

विलास०—तुम मजेसे चुप रह सकती हो; किन्तु मुझसे नहीं रहा जाता। मुझे अपनी जिम्मेदारीका बोध है। एक विराट् कार्यका भार सिरपर लेकर मैं किसी तरह चुप नहीं रह सकता। हमारे मन्दिरकी प्रतिष्ठा इसी बड़े दिनकी छुट्टियोंमें होगी। सब तय हो गया है। यहाँ तक कि निमन्त्रण करना तक मैंने नहीं बाकी रखा। ओह—कल सवेरेसे कैसी दौड़ धूप मुझे करनी पड़ी है। खैर, उस तरफके कामसे तो एक तरहसे निश्चिन्त हो गया। कौन कौन आवेंगे, यह भी नोट कर लाया हूँ। पढ़कर देखो, बहुतोंको तुम पहचान लोगी।

[बेग खोलकर उसके भीतरसे वह कागज निकालकर विजयाको देता है। विजया उसे लेती अवश्य है, किन्तु उसका मुख देखकर जान पड़ा कि वह बहुत खिन्न हो गई है।]

विलास०—मामला क्या है? इस तरह चुपचाप क्यों हो?

विजया—मैं यह सोच रही हूँ कि आप जो उन लोगोंको निमन्त्रण दे आये, सो उनको अब क्या कहा जायगा ?

विलास०—इसके माने ?

विजया—मन्दिरकी स्थापनाके सम्बन्धमें मैं अभी तक कुछ स्थिर नहीं कर पाई हूँ।

[तीव्र विस्मय और उससे भी अधिक क्रोधसे विलासके मुखका भाव भयानक हो उठा, किन्तु कंठके स्वरको वह यथाशक्ति संयत करके बोला—]

विलास०—इसके माने क्या हैं ? तुमने क्या सोचा है कि इन छुट्टियोंमें यह काम न किया जा सका तो फिर कभी किया जा सकेगा ? वे लोग तो तुम्हारे—वह क्या कहते हैं—वह नहीं हैं कि तुम्हें जब सुविधा होगी तभी दौड़े आकर कृतार्थ होंगे ! मनस्थिर नहीं हुआ, इसका मतलब क्या हैं, जरा सुनूँ ?

विजया—(धीमे स्वरमें) यहाँ ब्रह्ममन्दिर स्थापित करनेकी कोई सार्थकता नहीं है। उसकी स्थापना नहीं होगी।

विलास—(कुछ देर स्तंभित रहकर) मैं जानना चाहता हूँ कि तुम यथार्थ ब्राह्म महिला हो कि नहीं।

विजया—(विलासके मुखकी ओर चुपचाप ताकते रहकर) घर जाइए, वहाँसे शान्त होकर लौटे विना आपके साथ इस बारेमें बात नहीं हो सकेगी। इस समय इसे रहने दीजिए।

विलास०—हम लोग तुम्हारा संस्रव त्याग दे सकते हैं, यह जानती हो ?

विजया—इस बारेमें मैं काका बाबूसे बात करूँगी, आपके साथ नहीं।

विलास०—हम लोग तुम्हारा संस्पर्श तज देंगे तो क्या होगा, जानती हो ?

विजया—नहीं। किन्तु आपको अगर जिम्मेदारीका खयाल इतना जबर्दस्त है, तब मेरी इच्छा न रहने पर भी जिन्हें निमंत्रित करके अपदस्थ करनेकी जिम्मेदारी आपने ली है, उनका भार आप ही उठाइए। मुझसे उसमें हिस्सा बँटानेका अनुरोध न कीजिएगा।

विलास० – मैं कामकाजी आदमी हूँ। काम ही मुझे प्यारा है, खिलवाड़ मुझे पसंद नहीं—यह याद रक्खो विजया !

विजया—(शान्तस्वरमें) अच्छा, मैं नहीं भूलूँगी।

विलास०—(प्रायः चीत्कार करके) हाँ—जिसमें तुम न भूलो, यही मैं देखूँगा।

[विजया कुछ न कहकर जानेका उपक्रम करती है।]

विलास०—अच्छा फिर इतना बड़ा मकान किस काममें आवेगा, सुनूँ तो सही ? उसे तो खाली पड़ा रहने नहीं दिया जा सकता ?

विजया—(सिर उठाकर दृढ़भावसे) लेकिन यह तो अभी तक तय नहीं हुआ कि वह घर लेना ही होगा।

विलास०—(क्रोधके मारे जोरसे जमीनपर पैर पटककर) हो गया है, सौ बार तय हो गया है। मैं समाजके मान्य व्यक्तियोंको बुलाकर उनका अपमान नहीं कर सकूँगा। यह घर हम लोगोंको चाहिए ही—यह मंदिरकी स्थापना करके ही मैं मानूँगा। यह तुमको अभी बताये देता हूँ।

(रासबिहारी लौट आते हैं।)

विलास०—सुना बाबूजी, विजया कहती हैं कि यह अभी नहीं होगा। यह अपमान—

रास०—नहीं होगा ? क्या नहीं होगा ? कौन कहता है कि नहीं होगा ?

विलास०—(उँगलीसे दिखाकर) यह कहती हैं कि मन्दिरकी प्रतिष्ठा इस समय नहीं हो सकती।

रास०—विजया कहती हैं कि न होगी ? कहते क्या हो ? अच्छा स्थिर होओ भैया, स्थिर होओ। किसी भी अवस्थामें अस्थिर या उतावला न होना चाहिए। पहले सब सुन लूँ। अच्छा, निमन्त्रण दे दिया गया है ? दे दिया गया है। अच्छी बात है, वह तो अब लौटाया नहीं जा सकता—असंभव है। इधर दिन भी अधिक नहीं हैं। करना है तो इसी बीचमें तैयारी पूरी करनी चाहिए। इसमें तो सन्देह नहीं है बेटी !

विजया—किन्तु वह अगर अपनी इच्छासे घर छोड़कर न चले गये, तो किसी तरह यह मंदिरकी स्थापना नहीं हो सकती काका बाबू !

रास०—स्वेच्छासे घर छोड़नेकी बात किसकी कह रही हो बेटी ? जगदीशके लड़केकी ? उसने तो घर छोड़ दिया है—तुमने सुना नहीं ?

[विजया विलासकी ओर पीठ घुमाकर खड़ी होती है। उसके होठ काँपने लगते हैं। वह अपनेको संयत करके, सँभालकर कहती है—]

विजया—ना, मैंने नहीं सुना। किन्तु उनके सब सामानका क्या हुआ? वह सब ले गये?

विलास०—(हँसनेकी मुद्रामें) सुना है, सामानके नामपर रहनेकी दालानमें उसकी एक टूटी चारपाई थी। जान पड़ता है, उसीके ऊपर वह सोया करता था। मैं उस चारपाईको निकालकर पेड़के नीचे डाल देनेकी आज्ञा देकर कलकत्ते गया था। आज स्टेशनपर उतरते ही दरबानकी जबानी सुना कि यही सब लेनेके लिए वह आज सवेरे फिर आया है। खैर, उसका जो कुछ है, उसे वह ले जाय, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

रास०—यही तुममें दोष है विलास। मनुष्य चाहे जैसा अपराधी हो, भगवान् उसे चाहे जितना दण्ड दें, हमें उसके दुःखमें दुःखित होना, समवेदना प्रकट करना उचित है। मैं यह नहीं कहता कि तुम हृदयमें उसके लिए कष्टका अनुभव नहीं करते; किन्तु मेरा कहना यही है कि बाहर भी उसे प्रकट करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुमने मुझसे उससे एक बार मिलनेके लिए क्यों नहीं कहा? देखता—अगर कुछ—

विलास०—उससे भेंट करके निमन्त्रण देनेके सिवा क्या मुझे और कोई काम नहीं था बाबूजी! आप भी न जाने कैसी बातें करते हैं। इसके सिवा मेरे पहुँचनेके पहले ही तो डाक्टर साहब अपना संदूक-पिटारा, मशीन-पुर्जे वगैरह सब समेटकर खिसक गये थे। विलायतके डाक्टर हैं—और क्या! एक अपदार्थ हंबग (Humbug) कहींका!

रास०—ना विलास, तुम्हारी इस तरहकी बातचीतको मैं क्षमा नहीं कर सकता। अपने इस व्यवहारके लिए तुमको लज्जित होना चाहिए—पश्चात्ताप करना चाहिए।

विलास०—किसलिए—जरा सुनूँ तो? पराये दुःखमें दुःखित होनेकी, पराया क्लेश निवारण करनेकी शिक्षा मैंने पाई है। किन्तु जो दाम्भिक घरपर चढ़कर अपमान कर जाय उसे मैं माफ नहीं कर सकता। इतनी भण्डता या बनावट मुझमें नहीं है—मैं खरा आदमी हूँ।

रास०—घरपर चढ़कर कौन तुम्हारा अपमान कर गया? किसकी बात तुम (कह) रहे हो?

विलास०—जगदीश बाबूके सुपुत्र नरेन्द्र बाबूकी ही बात कह रहा हूँ बाबूजी।

वह एक दिन इन विजयाके घरमें बैठकर मेरा अपमान कर गये थे। तब मैं उन्हें पहचानता नहीं था, इसीसे—(विजयाको दिखाकर) वह आदमी इनका भी अपमान करनेसे बाज़ नहीं आया। तुम लोग वह बात जानते हो? (विजयासे) पूर्ण बाबूका भानजा कहकर जिसने अपना परिचय दिया था और उस दिन तुम्हारा तक अपमान कर गया था, जानती हो, वह कौन है? उस समय तो तुमने बहुत प्रश्रय दिया था। वही नरेन्द्र है। उस समय अगर वह अपना यथार्थ परिचय दे देता—तभी मैं कहता कि हाँ, वह मर्द है! ठग कहींका!

विजया—वही नरेन्द्र बाबू हैं? दरबान भेजकर उन्हीको आपने घरसे निकाल दिया है? मेरे ही नामसे! मेरे ही कर्जको चुकानेके लिए!

[क्रोध और क्षोभसे जैसे वह दौड़कर चली गई।]

रास०—(विमूढ़ भावसे) यह और क्या हुआ?

विलास०—सो मैं क्या जानूँ!

रास०—अगर जानते नहीं तो इतना दंभ करके यह कहनेकी ही क्या जरूरत थी? शुरूसे ही सुन रहे हो कि वह जगदीशके बेटेके ऊपर जोर-जबर्दस्ती नहीं चाहती, तो भी—

विलास०—इतनी चालबाजी मुझे नहीं आती। मैं सीधी राहसे चलना पसंद करता हूँ।

रास०—वही पसंद करो। सीधी राह वही एक दिन तुमको अच्छी तरह दिखा देगी।—सीधी राह! सीधी राह!

(कहते कहते तेजीके साथ प्रस्थान।)

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—विजयाके बैठनेका कमरा

[विजया बाहर किसीकी ओर एकटक ताक रही है। फिर उठकर खिड़कीके पास जाकर उसे हाथके इशारेसे बुलाती है। तब एक बालक प्रवेश करता है। बालक नंगे बदन है। धोतीके कोछेमें लैया है, जिसे खाना अभी खतम नहीं हुआ।]

परेश—मुझे बुला रहीं थी माजी ?

विजया—क्या कर रहा था रे ?

परेश—लया खा रहा था।

विजया—यह धोती तुझे किसने ले दी है परेश ? नई देख पड़ रही है !

परेश—हाँ, नई है। माने ले दी है।

विजया—यह धोती खरीद दी है ! छी छी—कैसी भद्दी किनारी है रे ! (अपनी सारीकी सुन्दर चौड़ी किनारी दिखाकर) ऐसी किनारी तुझे चाहिए—यह नहीं अच्छी लगती।

परेश—(गर्दन हिलाकर सहमति प्रकट करता हुआ) मा कुछ भी खरीदना नहीं जानती। तुम्हें यह धोती किसने खरीद दी है ?

विजया—मैंने आप खरीदी है।

परेश—आप खरीदी है ? दाम कितने पड़े ?

विजया—तुझे इससे क्या है रे ! लेकिन देख, मैं ऐसी ही एक धोती तुझे ले दूँगी अगर तू—

परेश—कब ले दोगी ?

विजया—ले दूँगी, अगर तू एक बात मेरी सुने। लेकिन तेरी मा या और कोई न जानने पावे।

परेश—मा कैसे जानेगी? तुम कहो ना—मैं अभी सुनूँगा?

विजया—तू दिघड़ा जानता है?

परेश—वही तो वहाँ। कोशेकी तितलियाँ खोजने बहुधा दिघड़ा जाया करता हूँ।

विजया—वहाँ सबसे बड़ा मकान किसका है, जानता है?

परेश—हाँ, बाम्हनोंका है! वही जो उस साल ताड़ी पीकर छतसे फाँद पड़े थे, उनका। वही जहाँ गोविन्दकी लैया-बताशेकी दूकान है और उसीके पास उनका पक्का मकान है। गोविन्द क्या कहता है, जानती हो माजी! कहता है—चीजें महँगी हो गई है, अब आधे पैसे (धेले) के ढाई गण्डा बताशे नहीं मिलेंगे, अब सिर्फ दो गण्डा मिलेंगे! लेकिन तुम अगर समूचे एक पैसेके मगाओ तो मैं पाँच गण्डा ला सकता हूँ।

विजया—तू दो पैसेके बताशे मोल ला सकता है?

परेश—हाँ, इस हाथमें पहले एक पैसेके पाँच गण्डा गिनकर लूँगा—फिर कहूँगा, दुकानदार, इस हाथमें और पाँच गण्डा गिन दे। दे चुकने पर कहूँगा—माजीने दो बताशे रूँकनमें देनेको कहा है—क्यों न?—तब उसे दोनों पैसे दूँगा—ठीक है न?

विजया—(हँसकर) हाँ, तब दोनों पैसे उसके हाथमें देना और तब दूकानदारसे पूछना कि उस बड़े मकानमें जो नरेन्द्र बाबू रहते थे—वह कहाँ गये? क्यों रे, यह तू कर सकेगा कि नहीं?

परेश—(सिर हिलाकर)—अच्छा, दो पैसे लाओ न तुम—मैं दौड़कर जाऊँ ले आऊँ।

विजया—(उसके हाथमें पैसे देकर) बताशे हाथमें पाकर पूछना भूल तो न जायगा।

परेश—ना—

[कहकर ही दौड़ता हुआ चल दिया। विजया लौटकर एक कुर्सीपर जैसे ही बैठती है, वैसे ही परेशकी मा प्रवेश करती है]

परेशकी मा—जान पड़ता है, परेशको कहीं तुमने भेजा है बिटिया रानी?

वह एकदम बकटुट भागा गया है। मैंने पुकारा तो जवाब ही नहीं दिया।

विजया—(हँसकर) ओ, परेश दौड़ा गया है ? तो निश्चय ही दिघड़ा गया है बताशे लेने। अचानक मुझसे दो पैसे पा गया है कि नहीं !

परे० मा—लेकिन बताशे तो यहाँ पास ही मिलते हैं—वहाँ क्यों गया ?

विजया—क्या जाने, वहाँ कोई गोविन्द हलवाई है; वह शायद कुछ ज्यादा देता है।

परे० मा—वह जो तुमने किताबें उठाकर ठीकसे रखनेके लिए कहा था—उठाओगी नहीं ?

विजया—इस समय रहने दो परेशकी मा।

परे० मा—एक बात तुमसे कहना चाहती हूँ बिटिया रानी, मगर डरके मारे कह नहीं सकती।

विजया—क्यों, तुमको काहेका डर है ? क्या बात है ?

परे० मा—कालीपद कहता था कि वह तो अब टिक नहीं सकता। छोटे बाबू उसे फूटी आँखों नहीं देख सकते। जब देखो तब डाँटते—धमकाते हैं। वह जो बड़े मालिकका खानसामा था; उसे कलकत्तेमें रहनेका अभ्यास था। सुनती हूँ, कल छोटे बाबूने उसे हुक्म दिया है कि यहाँ काम कम है। उसे उड़िया मालीके साथ बागमें मेहनत करनी होगी। नहीं तो जवाब दे दिया जायगा। अब वह बूढ़ा हुआ; भला बागमें जाकर कुदाल कैसे चला पावेगा ?

विजया—(दृढ़ कण्ठसे) ना, उसे कुदाल नहीं चलानी पड़ेगी। छोटे बाबूसे मैं कह दूगी।

परे० मा—हमारे यदु घोष गुमाश्ता कहते थे कि—

विजया—इस वक्त रहने दो परेशकी मा। मुझे एक जरूरी चिट्ठी लिखना है, फिर सुनूँगी। अब तुम जाओ।

परे० मा—अच्छा जाती हू बिटिया रानी।

[परेशकी माके चले जानेपर विजयाने खिड़कीके पास जाकर झाँककर देखा; फिर तुरन्त ही लौट आकर एक चिट्ठीका कागज पैडसे निकालकर लिखने बैठी। कालीपदने दरवाजेके पास मुँह बढ़ाकर पुकारा—]

कालीपद—बिटिया रानी !

विजया—परेशकी माँसे तो मैंने तुमसे कहनेको कह दिया है कालीपद, तुम्हें बागमें जाकर काम न करना पड़ेगा।

काली०—लेकिन छोटे बाबू—

विजया—उनसे मैं कह दूँगी, तुम्हें कोई डर नहीं है। अच्छा, अब जाओ।

काली०—वे जो कपड़े धूपमें डाले गये हैं, उन्हें—

विजया—उन्हें अभी रहने दो कालीपद। यह जरूरी चिट्ठी समाप्त किये विना मैं न उठ सकूँगी।

[कालीपदके जानेपर विजया उठकर और एक बार खिड़की खोल कर अपनी जगहपर आ बैठी। चिट्ठीका पैड अलग हटाकर अखबार खींच लिया। उसके भावसे जान पड़ता है, बहुत ही चंचल हो रही है; किसी काममें मन नहीं लगा पाती।]

यदु—(नेपथ्यसे) माजी!

विजया—कौन है?

यदु—(दरवाजेके पास आकर) मैं यदु हूँ। क्या आ सकता हूँ मालिकिन?

विजया—नहीं यदु बाबू, इस समय मुझे अवकाश नहीं है। आप और किसी समय आइएगा।

यदु—अच्छा माजी!

[विजया अखबार पढ़ रही थी। दूसरी ओरसे दबे पैरों बड़ी सावधानीसे, परेशने प्रवेश किया। विजयाने उठकर खड़े होकर अत्यन्त व्यग्र स्वरमें प्रश्न किया—]

विजया—दूकानदारने क्या कहा परेश?

परेश—(धोतीके पल्लेमें छिपाये हुए बताशोंकी ओर इशारा करके) बताशे ही तो? एक पैसेके छः गण्डाके हिसाबसे दिये हैं!

विजया—अरे नहीं—उसने नरेन्द्र बाबूके बारेमें क्या क्या कहा, सो बता?

परेश—(सिर हिलाकर) नहीं जानता। दुकानदारने पैसेमें छः गण्डा देनेकी बात किसीसे कहनेको मना कर दिया है। कहता क्या है, जानती हो माजी—

विजया—तू नरेन्द्र बाबूकी बात क्या जान आया है, वही कह न?

परेश—वह वहाँ नहीं हैं—कहीं चले गये हैं। गोविन्द कहता क्या है, जानती हो माजी ? कहता है, बारह गण्डेके—

विजया—(रूखे स्वरमें) ले जा अपने बारह गण्डा बताशे मेरे सामनेसे।

(विजया खिड़कीके पास जाकर खड़ी हो जाती है।)

परेश—(बताशोंके दोनों दोने हाथमें लेकर) इससे ज्यादा वह देता नहीं माजी !

विजया—(जरा देर बाद मुँह घुमाकर) परेश, ये तू ले जाकर खा ले।

(यह कहकर फिर खिड़कीके बाहर ताकने लगती है।)

परेश—(डरकर) सब खा लूँ ?

विजया—(मुँह घुमाये विना) हाँ, जा, सब खा ले। मुझको जरूरत नहीं है।

परेश—इससे ज्यादा उसने दिये ही नहीं माजी—मैंने बहुत कहा।

विजया—जाने दे। मैं खफा नहीं हूँ परेश—बताशे तू ले जा—जाकर खा।

परेश—सब अकेले खा लूँ ? (जरा चुप रहकर) उन काने भट्टाचारजीसे जाकर पूछ आऊँ माजी ?

विजया—काने भट्टाचार्य कौन रे ? क्या पूछ आवेगा ?

परेश—पूछ आऊँगा कि नरेन बाबू कहाँ गये ?

[मुँह घुमाते ही विजयाने देखा, नरेन्द्र कमरेके भीतर प्रवेश कर रहा है। उसके हाथमें एक चमड़ेका बक्स है। उसे नीचे रखकर हाथ उठाकर नरेन्द्र नमस्कार करता है।]

विजया—(लज्जित होकर) जा जा, अब पूछनेकी जरूरत नहीं है। तू जा।

परेश—(क्षुण्ण स्वरमें) काने भट्टाचारजी उनके पड़ोसके ही घरमें रहते हैं कि नहीं। गोविंद हलवाई कहता है कि नरेनबाबूकी खबर वही जानते हैं।

विजया—(सूखी हँसी हँसकर) आइए, बैठिए। (परेशसे) तू अब जा न परेश। कौन ऐसी बड़ी बात है—न हो उसे फिर कभी जाकर जान आना। अभी जा— (परेशकी समझमें कुछ न आया। वह चला गया।)

नरेन्द्र—आप नरेन्द्र बाबूकी खबर जानना चाहती हैं ? वह कहाँ हैं, यही ?

विजया—(कुछ इधर-उधर करके)—हाँ, सो किसी दिन जान लूँगी।

नरेन्द्र—क्यों ? कोई दरकार है ?

विजया—दरकारके अलावा क्या कोई किसीके बारेमें जानना नहीं चाहता ?

नरेन्द्र—कोई क्या करता है या क्या नहीं करता, इसे छोड़ दीजिए। लेकिन आपके साथ तो उसका सब संबंध समाप्त हो गया है। अब फिर क्यों उसका पता लगा रही हैं ? क्या आपका सब कर्जा नहीं चुका ? (विजया चुप रहती है) अगर कुछ और देना उसके जिम्मे निकलता हो, तो भी जहाँतक मैं जानता हूँ, उसके पास ऐसा कुछ नहीं है, जिससे वह अदा हो सके। अब उसकी खोज करना वृथा है।

विजया—किसने आपसे कहा कि मैं कर्जेके लिए ही उनका पता लगा रही हूँ ?

नरेन्द्र—इसके सिवा और क्या कारण हो सकता है, यह तो मेरी समझमें नहीं आता। वह भी आपको नहीं पहचानते और आप भी उनको नहीं पहचानतीं।

विजया—वह भी मुझे पहचानते हैं और मैं भी उन्हें पहचानती हूँ !

नरेन्द्र—वह आपको पहचानते हैं, यह ठीक है, लेकिन आप उन्हें नहीं पहचानतीं।

विजया—कौन कहता है कि मैं उनको नहीं पहचानती ?

नरेन्द्र—मैं कहता हूँ। मान लीजिए, मैं ही अगर आपसे कहूँ कि मेरा नाम नरेन्द्र है तो उसे ही आप मान लेंगी ? 'ना' नहीं कह सकेंगी ?

विजया—ना तो मैं सचमुच ही नहीं कह सकूँगी, और आपसे भी कहूँगी कि यह सत्य बात आपको भी बहुत पहले ही मुझसे कह देनी चाहिए थी। (नरेन्द्रका चेहरा उतर गया और वह चुप रहा) अपना औरका और परिचय देकर अपनी आलोचना सुनना और आड़में खड़े होकर सुनना क्या आपको एक ही बात नहीं जान पड़ती नरेन्द्र बाबू ? मुझे तो जान पड़ती है। लेकिन इतना ही मुझमें और आपमें अन्तर है कि हम ब्राह्म समाजी हैं और आप लोग हिन्दू।

नरेन्द्र—(तनिक चुप रहकर) आपके साथ अनेक प्रकारकी आलोचनाके बीच मेरी अपनी आलोचना भी अवश्य थी, किन्तु उसमें मेरा कोई बुरा अभिप्राय बिल्कुल न था। आखिरी दिन परिचय देनेका इरादा भी मैंने किया

था, लेकिन न जाने क्यों, वैसा हो नहीं पाया। मगर इससे तो आपकी कोई हानि नहीं हुई ?

विजया—हानि तो आदमीकी कितनी ही तरहकी हो सकती है नरेन बाबू। और अगर हुई हो तो वह हो ही गई। अब आप उसे पूरा करनेका कोई उपाय नहीं कर पावेंगे। उसे जाने दीजिए, किन्तु यदि इस समय सचमुच ही आपके निजके बारेमें कोई बात मैं जानना चाहूँ तो क्या—

नरेन्द्र—नाराज होऊँगा ? ना—ना—ना।

[प्रशान्त निर्मल हँसीसे उसका मुख उज्ज्वल हो उठा।]

विजया—अब आप हैं कहाँ ?

नरेन्द्र—एक दूसरे गाँवमें मेरी दूरके नातेकी एक बुआ अब भी मौजूद हैं। उन्हींके घर जाकर ठहरा हूँ।

विजया—किन्तु आपके सम्बन्धमें जो सामाजिक गड़बड़ है उसे क्या उस गाँवके लोग नहीं जानते ?

नरेन्द्र—जानते क्यों नहीं !

विजया—फिर ?

नरेन्द्र—(जरा सोचकर) उनकी जिस कोठरीमें हूँ, उसे ठीक घरके भीतर नहीं कहा जा सकता; और मेरी दशाके बारेमें सुनकर उनके लड़कोंने भी शायद कुछ दिन मेरे ठहरनेमें कोई आपत्ति नहीं की। मगर हाँ, यह ठीक है कि अधिक दिन उनके घरमें ठहरकर उन्हें संकटमें नहीं डाला जा सकता। (जरा चुप रह कर) अच्छा, सच बताइए, क्यों यह सब पता लगा रही थीं आप ? बाबूजीका क्या कुछ और देना बाकी निकला है ? (विजया चेष्टा करके भी कुछ कह नहीं सकती) पिताका ऋण कौन लड़का नहीं चुकाना चाहता ? किन्तु सत्य कहता हूँ आपसे कि अपने नामसे या किसी औरके नामसे मेरा कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे बेचकर मैं आपको रुपए दे सकूँ। सिर्फ यह माइक्रोस्कोप (Microscope) या अणुवीक्षण यंत्र है। इसे कलकत्ते लिये जा रहा हूँ, शायद इसे कहीं बेचकर और किसी जगह जानेका खर्च जुटा सकूँ। बुआकी भी हालत बहुत खराब है। यहाँतक कि खाना-पीनातक—(विजया मुँह घुमाकर दूसरी ओर देखती रहती है) हाँ, दया करके अगर कुछ समय दीजिए तो बाबूजीका कर्ज चाहे जितना हो, मैं उसे अपने नाम लिखाकर यहाँसे जा सकता हूँ। भविष्यमें

उसे चुकानेकी प्राणपणसे चेष्टा करूँगा। आप रासविहारी बाबूसे जरा कह दगी, तो वह इस बारेमें मुझपर और दबाव नहीं डालेंगे।

विजया—इस समय लगभग तीन बजनेको हैं। आपका भोजन हो गया?

नरेन्द्र—हाँ, एक तरहसे हो ही गया है। कलकत्ता जानेके लिए ही चला हूँ न, राहमें सोचा, एक बार आपसे मिलता जाऊँ। इसीसे एकाएक आ पड़ा।

विजया—लेकिन आपका मुँह देखकर तो जान पड़ता है कि आपने अभी भोजन नहीं किया।

नरेन्द्र—(हँसकर) गरीब-दुखियोंका चेहरा ही ऐसा होता है कि उसमें भोजनकी तृप्तिका चित्र सहजमें नहीं खिलना चाहता। आप लोगोंके साथ मेरा अन्तर इसी जगहपर है।

विजया—सो मैं जानती हूँ! अच्छा आपके इस माइक्रोस्कोपका मूल्य कितना है?

नरेन्द्र—खरीदनेमें तो मेरे पाँच सौसे अधिक रुपए लगे थे; लेकिन अब ढाई सौ—दो सौ—भी मिलें तो मैं दे दूँगा। बिल्कुल नया है।

विजया—इतने कममें दे देंगे? आपको क्या अब इसकी जरूरत नहीं रही? जिस कामके लिए लिया था, वह हो गया?

नरेन्द्र—काम? काम तो कुछ भी नहीं हुआ।

विजया—मुझे अपने लिए यह मशीन खरीदनेकी बहुत दिनोंसे इच्छा है, लेकिन वह शौक पूरा नहीं कर पाई। और खरीदकर ही क्या होगा? कलकत्ता छोड़कर चली आई हूँ, यहाँ इसे सिखानेवाला कहाँ पाऊँगी?

नरेन्द्र—मैं सब सिखाकर जाऊँगा। देखिएगा?

[विजयाकी सम्मतिकी राह न देखकर माइक्रोस्कोप निकालकर एक छोटी तिपाईके ऊपर रखकर फोकस ठीक करके बोला—]

नरेन्द्र—आप इस चेयरपर बैठिए, मैं अभी सब दिखाकर समझाये देता हूँ। जिन लोगोंने इस अणुवीक्षण यंत्र (खुर्दबीन) का साक्षात् परिचय नहीं प्राप्त किया, वे सोच भी नहीं सकते कि इस छोटी-सी चीजके भीतर कितना बड़ा विस्मय छिपा हुआ है। यह स्लाइड (Slide) बहुत ही स्पष्ट है। जीव-जगत्का कितना बड़ा विस्मय इतनेसेमें मौजूद है! यह देखिए (विजया मशीनके चोंगेपर आँख लगाकर देखने लगती है)—क्यों, देख पा रही हैं न?

विजया—हाँ, देख पा रही हूँ—धुँधला धुआँ-सा सब एकाकार देख पड़ रहा है।

नरेन्द्र—धुआँ?—ठहरिए—ठहरिए—जान पड़ता है—(कल-कब्जे कुछ घुमा फिराकर, आप देखनेके बाद सिर उठाकर) अब देखिए। वह जो छोटा-सा एक—क्यों, अब तो धुँधला नहीं है?

विजया—नहीं। अबकी धुँधलेके बदले धुआँ खूब गाढ़ा हो गया है।

नरेन्द्र—गाढ़ा हो गया है? यह कैसे हो सकता है?

विजया—(सिर उठाकर) यह म कैसे जान सकती हूँ? धुआँ देख पड़े तो क्या यह कहूँ कि आग देख रही हूँ?

नरेन्द्र—मैं क्या यही कह रहा हूँ? यह स्क्रू घुमा-फिराकर अपनी नजरके माफिक कर लीजिए न? इसमें कठिन क्या है?

[विजया मशीनमें आँख लगाकर हाथसे पेंच घुमाने लगती है।]

नरेन्द्र—(व्यस्त होकर) अरे अरे, यह क्या कर रही हैं—कितना घुमा रही हैं—यह क्या चर्खा है? ठहरिए, मैं ठीक कर दूँ। (ठीक करके) अब देखिए।

[विजया फिर देखनेकी चेष्टा करती है।]

नरेन्द्र—क्यों, अब देख पाया?

विजया—ना।

नरेन्द्र—तो अब देखनेकी जरूरत नहीं। मैंने अपने जीवनमें ऐसी मोटी बुद्धि किसीकी नहीं देखी।

विजया—मेरी बुद्धि मोटी है या आप दिखाना नहीं जानते?

नरेन्द्र—(अनुतापके स्वरमें) बताइए, और किस तरह दिखाऊँ? आपकी बुद्धि कुछ सचमुच मोटी नहीं है, किन्तु मुझे निश्चय जान पड़ता है कि आप मन नहीं लगा रही हैं। मैं बक रहा हूँ और आप मशीनमें आँख लगाये, सिर झुकाये हँस रही हैं।

विजया—किसने कहा, मैं हँस रही हूँ?

नरेन्द्र—मैं कहता हूँ।

विजया—आपकी भूल है।

नरेन्द्र—मेरी भूल है ? अच्छी बात है, पर यह मशीन तो भूल नहीं है, फिर क्यों नहीं आपको देख पड़ता ?

विजया—आपकी मशीन खराब है।

नरेन्द्र—(विस्मयसे) खराब है ? आप जानती हैं, ऐसी पावर-फुल (powerful=शक्तिशाली) माइक्रोस्कोप मशीन यहाँ अधिक लोगोंके पास नहीं हैं—इतनी बड़ी और इतना स्पष्ट दिखानेवाली।

[इतना कहकर एक बार खुद अपनी आँखसे देखकर जाँचनेकी अति व्यग्रतामें झुकते ही दोनोंके सिर लड़ जाते हैं।]

विजया—ओः ! (हाथसे सिर सहलाते-सहलाते)—जानते हैं, सिर टकरा देनेसे क्या होता है ? सींग निकल आते हैं।

नरेन्द्र—अगर सींग निकलते हैं तो आपके ही सिरसे निकलने चाहिए।

विजया—और नहीं तो क्या ? इस पुराने टूटे माइक्रोस्कोपको मैंने अच्छा नहीं कहा, इसलिए मेरा माथा सींग निकलने लायक है। वाह साहब, वाह !

नरेन्द्र—(सूखी हँसी हँसकर)—आपसे सच कहता हूँ, यह मशीन टूटी नहीं है। मेरे पास कुछ न होनेके कारण ही आपको सन्देह हो रहा है कि मैं आपको ठगकर रुपए लेनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। लेकिन आप बादको देखिएगा।

विजया—बादको देखकर फिर क्या कर लूँगी ? तब मैं आपको कहाँ पाऊँगी ?

नरेन्द्र—(तीखे स्वरमें) फिर आपने क्यों कहा कि लेंगी ? क्यों इतनी देर बेकार परेशान किया ? आज मैं कलकत्ते नहीं जा सका।

विजया—आपने ही क्यों नहीं कहा कि यह टूटा है ?

नरेन्द्र—(बहुत ही खीझकर)—सैकड़ों बार कह चुका कि यह टूटा नहीं है, तो भी आप इसे टूटा कहे जाती हैं ? (क्रोधको संयत करके, उठकर खड़े होकर) अच्छा यही सही। मैं और बहस करना नहीं चाहता—यह टूटा ही है; लेकिन सभी तो आपकी तरह अन्धे नहीं हैं। अच्छा, अब चलता हूँ।

(मशीनको बक्समें रखने लगता है)

विजया—(गम्भीर भावसे)—अभी कैसे जाइएगा ? आपको भोजन करके जाना होगा।

नरेन्द्र—ना, उसकी जरूरत नहीं है।

विजया—किसने कहा कि नहीं है ?

नरेन्द्र—किसने कहा ? आप मन-ही-मन हँस रही हैं ! क्या मेरी हँसी उड़ा रही हैं ?

विजया—लेकिन आपको निश्चय ही खाकर जाना होगा। जरा बैठिए, मैं अभी आती हूँ।

[विजया उठ जाती है। नरेन्द्र माइक्रोस्कोपको बक्समें बन्द करके तिपाईके नीचे रखता है। विजया आप भोजन-सामग्रीकी थाली लिये लौटती है। उसके पीछे कालीपद चायका सामान लिये है।]

विजया—इतनी ही देरमें आपने उसे बन्द भी कर दिया ? आपका क्रोध तो कुछ कम नहीं है।

नरेन्द्र—(उदास कण्ठसे)—आप नहीं लेंगी, इसमें क्रोध काहेका ? खाली कुछ देर बक बक करके मरा, इतना ही हुआ ! और कुछ नहीं।

विजया—(थाली टेबुलपर रखकर)–हाँ, यह हो सकता है। लेकिन आपने जो कुछ बका सो खालिस अपने लिए—एक टूटी मशीन गले मढ़ देनेके मतलबसे।—अच्छा अब खाने बैठिए, मैं चाय बना दूँ। (नरेन्द्र सीधा बैठा रहता है) अच्छा साहब, न हो मैं ही इसे ले लूँगी, आपको लौटाकर ले जाना न पड़ेगा। आप अब खाना शुरू कीजिए।

नरेन्द्र—आपसे दया करनेका तो मैंने अनुरोध नहीं किया !

विजया—लेकिन उस दिन किया था, जिस दिन मामाके लिए सिफारिश करने आये थे।

नरेन्द्र—वह दूसरेके लिए, अपने लिए नहीं। यह अभ्यास मुझे नहीं है।

विजया—खैर वह चाहे जो हो, लेकिन अब आप यह माइक्रोस्कोप लौटा नहीं ले जा सकेंगे। यह यहीं रहेगा। अब खाने बैठिए।

नरेन्द्र—इसके माने ?

विजया—माने कुछ तो हैं ही।

नरेन्द्र—(क्रुद्ध होकर) वही मैं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ। आप क्या इसे अटका रखना चाहती हैं ? यह भी क्या बाबूजीने आपके पास बंधक रखा था ? आप तो देखता हूँ तब मुझे भी अटका सकती हैं—कह सकती हैं कि बाबूजी मुझे भी आपके पास रेहन रख गये हैं !

[विजयाका मुँह लाल हो जाता है। वह गर्दन घुमा लेती है।]

विजया—कालीपद, तू खड़े खड़े क्या कर रहा है? जा, पान ले आ। (कालीपद चायका सामान टेबिलपर रखकर चला जाता है) लीजिए, झगड़ा न कीजिए—अब खाना शुरू कीजिए।

(नरेन्द्र चुपचाप गंभीर मुखसे खाने लगता है।)

नरेन्द्र—सुनिए।

विजया—सुनूँगी फिर। पहले पेटभर खा लीजिए।

नरेन्द्र—बहुत तो खा चुका।

विजया—अभी तो बहुत-सा पड़ा हुआ है।

नरेन्द्र—इसके लिए मैं क्या करूँ? मुझसे और न खाया जायगा।

विजया—सो मैं जानती हूँ, आपमें कुछ भी कर सकनेकी शक्ति नहीं है।—अच्छा, माइक्रोस्कोप देखना सीखकर मुझे क्या लाभ होगा?

नरेन्द्र—(विस्मयके साथ) देखना सीखकर क्या लाभ होगा?

विजया—हाँ, यही तो। इस सीखनेका लाभ अगर आप मुझे समझा दे सकें तो मैं खुशी खुशी इसे खरीद लूँगी, फिर यह चाहे कैसा ही टूटा और रद्दी क्यों न हो।

नरेन्द्र—आप न खरीदिए।

विजया—अच्छा तो समझा दीजिए न।

नरेन्द्र—देखिए, मैंने आपको जीवाणुओंकी गढ़न दिखानी चाही थी। खाली आँखोंसे वे नहीं देख पड़ते—जैसे उनका अस्तित्व ही नहीं है। उन्हें केवल इसी यन्त्रके द्वारा देखा जा सकता है। सृष्टि और प्रलयकी कितनी बड़ी शक्ति लेकर ये जीवाणु पृथिवी भरमें व्याप्त हैं, उनका यह जीवनका इतिहास—लेकिन आप तो कुछ सुन ही नहीं रही हैं।

विजया—सुनती नहीं हूँ तो क्या!

नरेन्द्र—क्या सुना, बताइए तो?

विजया—वाह, एक दिनमें ही कहीं सुनकर सीखा जाता है? आपने ही क्या एक दिनमें सीख लिया था?

नरेन्द्र—(अट्टहास करके) लेकिन आप तो एक सौ बरसमें भी न सीख पावेंगी। इसके सिवा यह सब आपको सिखाएगा ही कौन?

विजया—(होठ दबाकर हँसकर) क्यों, आप सिखाएँगे; नहीं तो यह टूटी मशीन मेरे सिवा और कौन लेगा ?

नरेन्द्र—आपके लेनेकी जरूरत नहीं है, और मैं सिखा भी नहीं पाऊँगा।

विजया—सिखाना ही होगा आपको। चीज आप बेच जायँगे और सिखाने कोई दूसरा आदमी आएगा ? न हो तो और एक काम कीजिए। सुना है, आप तसवीर अच्छी बनाते हैं। वही मुझे सिखा दीजिए। यह तो मैं सीख सकूँगी ?

नरेन्द्र—(उत्तेजित होकर) वह भी नहीं। जिस चीजको सीखनेमें मनुष्यको नहाने-खानेका भी होश नहीं रहता, उसीमें जब आप मन नहीं लगा सकीं तो चित्र बनानेमें क्या आपका मन लगेगा ? किसी तरह नहीं।

विजया—तो मैं चित्र बनाना भी नहीं सीख सकूँगी ?

नरेन्द्र—ना। आप तो कुछ भी मन लगाकर नहीं सुनतीं !

विजया—(छद्म गाम्भीर्यके साथ) लेकिन कुछ भी सीख न पानेपर तो सचमुच ही माथेपर सींग निकलेंगे !

नरेन्द्र—(ठहाका लगाकर) यही आपके लिए उचित दण्ड होगा।

विजया—(मुँह फेरकर हँसी छिपाते हुए) और नहीं तो क्या! आपमें सिखानेकी क्षमता नहीं है, यह क्यों नहीं कहते। लेकिन ये नौकर-चाकर क्या कर रहे हैं ? लाल्टैन क्यों नहीं जलाते ? जरा बैठिए, मैं लाल्टैन जला लानेके लिए कह आऊँ।

[विजयाने तेजीसे उठकर जैसे ही दरवाजेपरका पर्दा हटाया, वैसे ही अकस्मात् मानों भूत देखकर वह पीछे हट गई। पिता-पुत्र रासबिहारी और विलासबिहारी दोनों प्रवेश करके पास पड़ी हुई कुर्सियाँ खींचकर उनपर बैठ गये। विलासके चेहरेपर जैसे किसीने स्याहीका एक हाथ फेर दिया हो, ऐसा विश्री हो रहा था।]

विजया—(अपनेको सँभालकर) आप कब आये काका बाबू ?

रास०—(सूखी हँसीके साथ) लगभग आध घंटा हुआ, आकर उस सामनेके बरामदेमें बैठा था। लेकिन तुम बातचीतमें बहुत व्यस्त थीं, इसलिए नहीं पुकारा।—यह शायद जगदीशका लड़का है ? क्या चाहता है ?

विजया—(दबी आवाजमें) एक माइक्रोस्कोप उनके पास है। उसीको बेचकर वह यहाँसे चले जाना चाहते हैं। वही दिखा रहे थे।

विलास—(गरजकर) माइक्रोस्कोप ! ठगनेके लिए और कोई जगह जान पड़ता है, नहीं मिली ?　　　(नरेन्द्रका धीरे-धीरे दूसरे द्वारसे प्रस्थान ।)

रास०—अरे, यह बात क्यों कहते हो ? उसका उद्देश्य क्या है, सो तो हम जानते नहीं । अच्छा भी तो हो सकता है । अवश्य यह भी ठीक है कि जोर देकर कुछ भी नहीं कहा जा सकता । खैर वह चाहे जो हो, उसकी हमें क्या जरूरत है । दूरबीन होती तो न हो, कभी किसी समय दूरकी कोई चीज या दृश्य देखनेके काम भी आ सकती । (लैम्प हाथमें लिये कालीपदका प्रवेश ।)

रास०—कालीपद, वह बाबू शायद कहीं बैठा राह देख रहा है—उससे जाकर कह दो कि वह मशीन ले जाय ।

विजया—(डरते डरते) उनसे तो मैं लेनेको कह चुकी हूँ ।

रास०—(विस्मयका भाव दिखाकर)लेगी ? क्यों, उसकी क्या जरूरत है ?

(विजया चुप रहती है ।)

रास०—वह उसके दाम क्या माँगता है ?

विजया—दो सौ रुपए ।

रास०—दो सौ ? दो सौ रुपए माँगता है ? विलास, तब तो निहायत—क्यों विलास, कालेजमें तुम्हारे एफ. ए. क्लासकी केमिस्ट्री (Chemistry=रसायन) में यह सब तो तुमने काफी देखा भाला और इस्तेमाल किया है—दो सौ रुपए एक माइक्रोस्कोपके दाम ? यह तो कभी नहीं सुना । कालीपद, जा, उससे ले जानेके लिए कह आ । यह सब चालबाजी यहाँ नहीं चलेगी ।

विजया—कालीपद, जाओ तुम अपना काम करो । जो कहना होगा सो मैं आप ही कहूँगी ।　　　(कालीपदका प्रस्थान ।)

विलास—(श्लेष करके) क्यों बापू, तुमने बेकार अपनेको अपमानित कराया ? उन्हें शायद अभी कुछ दिखानेको बाकी है । (रासबिहारी चुप रहता है) हमने भी अनेक प्रकारके माइक्रोस्कोप देखे हैं बापू, लेकिन हो हो करके अट्टहास करनेकी बात किसी मशीनमें नहीं पाई ।

विजया—(विलासकी ओर पूरी तौरसे पीठ करके, रासबिहारीसे)—मुझसे क्या कुछ खास बात करनी है काका बाबू ?

रास०—(अलक्ष्य भावसे पुत्रके प्रति कुछ कटाक्षपात करके धीर भावसे)

हाँ, करनी क्यों नहीं बेटी। लेकिन क्या सचमुच तुमने उससे खरीदनेका वादा कर लिया है ? अगर वादा कर चुकी हो तो लेना ही होगा। दाम उसके चाहे जो हों, । संसारमें ठगाया जाना या ठगाये जानेसे बचना ही बड़ी बात नहीं है विजया, सत्य ही बड़ी चीज है । सत्यसे मुकरनेके लिए तो मैं तुमसे कह नहीं सकूँगा।

विलास — लेकिन इसीलिए क्या वह ठग ले जायगा ?

रास०—जाय, वह ठग ले जाय। जगदीशके लड़केसे इससे अधिक या इसके सिवा और कुछ प्रत्याशा न करो विलास। कालीपद उससे जाकर कह आवे कि कल आकर कचहरीसे रुपए ले जाय।

विजया—जो कहना होगा, मैं ही उनसे कहूँगी—और किसीके कहनेकी जरूरत नहीं है काका बाबू।

रास०—अच्छा अच्छा, तुम्हीं कहना बेटी। कह देना, वह डरे नहीं, दो सौ रुपए ही ले जाय।

विजया—रात हुई जा रही हैं; उन्हें बहुत दूर जाना होगा। आपके साथ क्या कल बात नहीं हो सकती काका बाबू ?

रास०—अच्छी बात है बेटी, कल ही सही। (जाना चाहता है, लेकिन एकाएक लौटकर) हाँ, शायद तुमने सुना होगा, तुम्हारे मन्दिरके भावी आचार्य दयाल बाबू आज सवेरे ही आ गये हैं—मन्दिर-भवनमें ही ठहरे हैं। और हमारे समाजके जो सब गण्य-मान्य व्यक्ति हैं, जिन्हें सम्मानके साथ हमने बुलाया है, वे सब कल सवेरे आवेंगे। मैं तुम दोनोंको उनके निकट परिचित कर दूँगा। अब और कितने दिन जियूँगा बेटी !

विजया—(विस्मयसे) वे सब कल ही आवेंगे ? कहाँ, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।

रास०—(विस्मयसे) तुमने नहीं सुना बेटी ? तो जान पड़ता है, जल्दीके कारण भूल गया बेटी। बुढ़ापेका यही तो दोष है।

विजया—लेकिन बड़े दिनकी छुट्टियोंको तो अभी बहुत दिन बाकी हैं काका बाबू !

रास०—बहुत दिन बाकी हैं, इसीसे तो मैंने सोचा कि अब शुभ कर्ममें देर नहीं करूँगा। वह मकान तो तुम ब्रह्म-मन्दिरकी स्थापनाके लिए मन-ही-मन दान

कर ही चुकी हो, अब केवल अनुष्ठान ही बाकी है। जितनी जल्दी हो सके, कर्त्तव्य समाप्त करना ही उचित है। वे लोग भी जब आनेको राजी हो गये तब पुण्यकार्य पड़ा रहने देनेको मन नहीं चाहा। बोलो बेटी यह क्या अच्छा नहीं किया ?

विजया—नरेन बाबूको बड़ी रात हुई जा रही है काका बाबू।

रास०—ओ, हाँ। अच्छा, उसे बुलाकर यही कह दो कि दो सौ रुपए ही दिये जायँगे।

विलास—रुपए क्या गिटकी हैं ? एक आदमीकी सनक पूरी करनेके लिए दो सौ रुपए नष्ट किये जायँगे ? तुम उसीके लिए राजी हो रहे हो बापू ?

रास०—विलास, खिन्न न होओ भैया। तुम लोगोंके पास बहुत है—जाने दो दो सौ। ले जाय वह दो सौ रुपए। बेटी विजया दयामयी हैं। दुःखी गरीबको थोड़ेसे रुपए सहायता करनेके लिए अगर देना ही चाहती हैं तो उसके लिए तुम्हें खीझना न चाहिए। बस अब देर न करो भैया, अँधेरा होता आ रहा है—चलो। कल सवेरे बहुत काम करना है, बहुत झंझट है। चलो चलें।—चलता हूँ विजया बेटी।

[रासबिहारी जाते हैं। विलास भी विजयाके प्रति क्रुद्ध कटाक्ष डालकर पिताके पीछे पीछे जाता है।]

विजया—(क्षणभर स्तब्ध रहकर)—कालीपद !

[नेपथ्यमें 'आता हूँ माजी' कहकर कालीपदका प्रवेश।]

विजया—कालीपद, शायद नरेन्द्र बाबू बाहर कहीं बैठे हैं। उनको बुला ला।

(कालीपद सिर हिलाकर जाता है।)

नरेन्द्र—(प्रवेश करके) यह मशीन मैं साथ ही लिये जा रहा हूँ। लेकिन आपका आजका दिन बहुत खराब बीता। अनेक अप्रिय बातें मैंने भी आपको सुनाईं और वे भी कह गये। क्या जानें किसका मुख देखकर आज आप सवेरे उठी थीं ?

विजया—मैं तो कहती हूँ कि रोज ही उसीका मुँह देखकर उठूँ नरेन बाबू ! बाहर खड़े खड़े आपने अपने कानोंसे ही सब सुना है, इसीसे कहती हूँ कि आपके सम्बन्धमें वे लोग जो सब बातें कह गये हैं, वह सब उनकी अनधिकार-चर्चा है। कल मैं उन्हें यह बता दूँगी।

नरेन्द्र—इसकी क्या आवश्यकता है ? इन सब चीजोंकी धारणा न होनेके कारण ही तो उनको मेरे ऊपर सन्देह हुआ है। नहीं तो मेरा अपमान करनेमें लाभ कुछ नहीं है। किन्तु रात होती जा रही है, अब मैं चलूँगा।

विजया—कल या परसों क्या आप एक बार आ सकेंगे ?

नरेन्द्र—कल या परसों ? लेकिन उसके लिए तो समय न होगा। कल मुझे कलकत्ते जाना होगा। वहाँ दो-तीन दिन ठहरकर इसे बेचकर मैं चला जाऊँगा। अब फिर शायद मुलाकात न हो सकेगी।

[विजयाकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आते हैं। वह न सिर उठा सकती है, न कुछ बोल पाती है।]

(कुछ हँसकर) आप स्वयं इतना हँसा सकती हैं और आपको ही मामूली-सी बातमें क्रोध हो आता है। बल्कि मैंने ही एक बार गुस्सेमें आपको 'मोटी बुद्धि' आदि न जाने क्या क्या कह डाला था। किन्तु उससे तो नाराज न हुईं और ओठोंमें हँसने लगीं जिससे मुझे और गुस्सा आगया। यदि फिर मुलाकात न भी हुई, तो भी आप मुझे हमेशा याद आवेंगी।

(विजया मुँह फिराकर आँसू पोंछने लगती है।)

नरेन्द्र—यह क्या ! आप तो रो रही हैं। ना—ना, आप नहीं ले सकेंगी, तो इसके लिए कोई दुःख न कीजिए। कलकत्तेमें मैं सचमुच इसे बेच सकूँगा, आप चिन्ता न करें।

[इतना कहकर वह बक्सको धीरे धीरे झुककर हाथमें उठा लेना चाहता है।]

विजया—ना, मैं नहीं दूँगी। वह मेरा है। रख दीजिए।

[रुलाईके वेगको दबा न पानेके कारण विजया टेबिलके ऊपर रखे माइक्रो-स्कोपके ऊपर मुँह रखकर रोने लगती है। हतबुद्धि होकर नरेन्द्र जरा देर खड़ा रहकर धीरे धीरे चला जाता है।]

द्वितीय दृश्य

स्थान—ग्रामकी राह

[निमन्त्रित पुरुष और महिलाएं विजयाके गाँव कृष्णपुरकी ओर धीरे धीरे बातचीत करते जा रहे हैं। रंगमंचमें सभी एक साथ प्रवेश नहीं करते। दो जने प्रवेश करके जब चले जाते हैं तब और दो-तीन जने प्रवेश करते हैं।]

१ पुरुष—दयाल बाबू ही आचार्य होंगे, यह क्या पक्का हो गया है?

२ पुरुष—हाँ, पक्का तो है ही। सुना है, वह कल ही यहाँ आ पहुँचे हैं।

१ पु०—मगर उनकी उपासना तो मैं सुन चुका हूँ, वैसी हृदयग्राही नहीं होती। इसीसे ढाकाके योगेश बाबूके यहाँ पिताके श्राद्धमें सायंकालकी उपासना मुझे करनी पड़ी थी। शरीर अस्वस्थ था। जुकामके कारण गला उखड़ा हुआ था। मैंने बार-बार अस्वीकार किया; लेकिन लोगोंने नहीं छोड़ा। किन्तु करुणानिधिकी कैसी अपार करुणा है कि इस दीन हीनकी उपासना सुनकर उस दिन वहाँ उपस्थित सभी लोगोंकी आँखोंसे बार-बार आँसू बहने लगे—कहना चाहिए कि आसुओंकी झड़ी लग गई। औरतोंका तो कुछ कहना ही नहीं, भावके आवेशसे वे प्रायः विह्वल हो गईं।

२ पु०—इसमें क्या सन्देह है, आपकी उपासना तो एक स्वर्गीय वस्तु है।

१ पु०—किन्तु तीस रुपयेसे कममें तो दयाल बाबूका गुजर हो नहीं सकता।

२ पु०—क्या कहते हैं प्रभात बाबू, तीस रुपए? बनमाली बाबूके इस्टेटमें उन्हें कुछ साधारण-सा काम भी करना होगा। सुना है, उन्हें सत्तर रुपये दिये जायँगे! घरका किराया तो लगेगा ही नहीं।

१ पु०—कहते क्या हैं? सत्तर रुपए! ईश्वर उनका मंगल करें।

२ पु०—इसके अलावा सुना है कि वनमाली बाबूकी लड़की जैसी सुशील है, वैसी ही दयामयी। प्रसन्न हो गई तो एक सौ रुपए वेतन मिलना भी विचित्र नहीं है।

१ पु०—एक सौ! ईश्वर उनका कल्याण करें। बड़ी अच्छी खबर है। जरा तेज चलिए, जिससे उनकी प्रातःकालकी उपासनामें शामिल हो सकें। (प्रस्थान)

[तीसरे, चौथे और पाँचवें व्यक्तिका प्रवेश। साथमें दो महिलाएँ हैं।]

३ पु०—यह ब्याह अगर हुआ तो कहना ही होगा कि वनमाली बाबूकी कन्या बड़ी भाग्यवती है। विलासबिहारी अति सुपात्र हैं। जैसे बलवान् वैसे ही उद्यमशील। उनमें जैसी भगवद्-भक्ति है वैसी ही अपने धर्मपर निष्ठा भी। उन्हें अगर समाजका उदीयमान स्तम्भ कहा जाय तो भी कुछ अत्युक्ति न होगी। आजकलके बहुत-से शिथिल विश्वासवाले युवकोंके लिए वह दृष्टान्त या आदर्श हैं।

४ पु०—बनमाली बाबूकी सम्पत्ति क्या बहुत अधिक है ?

३ पु०—अधिक ? अरे अगाध है अगाध। जितनी जमींदारी है, उतनी ही नगदी। बनमाली बाबू एकमात्र कन्याके लिए बहुत वैभव छोड़ गये हैं। मैं कहे देता हूँ, विलास बाबूके हाथमें आकर वह सब कई गुना हो जायगा।

५ पु०—किन्तु सुनते हैं, यह युवक कुछ रूढभाषी है।

३ पु०—रूढभाषी नहीं स्पष्टभाषी है। सत्यका वह आदर करता है। (पहली महिलाको इशारेसे दिखाकर) मेरी स्त्री द्वारा प्रतिष्ठित महिला-विद्यालयको उसने बनमालीकी कन्या विजयाके हाथसे सौ रुपयोंकी सहायता दी है। उसमें पुरस्कार वितरणके लिए और भी सौ रुपयोंका वचन दिया है।

१ महिला—राहमें ये सब बातें करनेकी क्या जरूरत है ?

४ पु०—तब तो बालिका विद्यालयकी ओर उन लोगोंका बहुत झुकाव है !

३ पु०—झुकाव ? अजी, मुक्तहस्त हैं।

४ पु०—मुक्तहस्त हैं ? खूब खूब, मंगलमय उनका मंगल करें। (प्रस्थान)

[छठे और सातवें व्यक्तिका प्रवेश]

६ पु०—ना, अब दूर नहीं है, हम लोग आ पहुँचे हैं।—हाँ, बनमाली बाबूकी सारी जायदादको देखने-भालने और सँभालनेका भार रासबिहारी बाबूके ऊपर ही है। केवल इसी समय नहीं, पहलेसे ही यह व्यवस्था चली आ रही है। बनमाली जबसे गाँवको छोड़ गये तबसे फिर लौटकर आये ही नहीं।

७ पु०—उनकी कन्याके साथ क्या रासबिहारी बाबूके लड़केका ब्याह पक्का हो गया है ?

६ पु०—पक्का तो है ही। यह सम्बन्ध कन्याके पिता स्वयं कर गये थे। एकाएक उनकी मृत्यु न हो जाती तो वह आप ब्याह कर जाते।

७ पु०—यह ब्याह क्या गाँवमें ही होगा ?

६ पु०—यह बात तो रासबिहारी बाबूने उस दिन आप ही कही। केवल यही नहीं, ब्याहके बाद बेटा और बहू यहीं गाँवमें रहेंगे। शहरके अनेक प्रलोभनोंके भीतर उन्हें न भेजेंगे, यही उनका विचार है। कमसे कम जितने दिन वह जीते हैं तब तक। खासकर इतनी बड़ी सम्पत्ति दूरसे तो देखी-सुनी

नहीं जा सकती—नष्ट होनेका डर रहता है। वह अपने जीवनकालमें ही यह सब काम-काज लड़केको सिखा जायेंगे।

७ पु०—बहुत ही अच्छे विचार हैं। ब्याह होगा कब?

६ पु०—इच्छा तो यही है कि जितनी जल्दी हो सके। मेरी जानमें मन्दिरकी प्रतिष्ठाके साथ साथ आप लोगोंके सामने ही बात पक्की हो जायगी। यह बड़े सुखका ब्याह है अविनाश बाबू। वर-वधूके ऊपर भगवान् अपना शुभ हाथ रखें—हम यही प्रार्थना करते हैं। चलिए, इस बागके उस छोरपर ही बनमाली बाबूका घर है।

७ पु०—आप क्या पहले कभी यहाँ आये थे?

६ पु०—(हँसकर) बहुत दफे। रासबिहारी बाबू मेरे बहुत दिनोंके पुराने मित्र हैं। उन्होंने अपने पत्रमें बताया है कि नवीन मन्दिरका भवन नदीके उस पार है—वहीं जरा दूरपर हम लोगोंके ठहरनेकी जगह भी बताई गई है। किन्तु विजयाकी इच्छा है कि आज सवेरे एक छोटा-सा अनुष्ठान उनके अपने रहनेके घरमें ही हो जाय और उसके बाद हम लोग मन्दिर-भवनमें जायँ।

७ पु०—अच्छा प्रस्ताव है। चलिए, शायद हम लोगोंको देर हो गई।

(प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

स्थान—विजयाके घरमें नीचेका हाल

समय—दिनका पहला पहर

[विजयाके घरकी नीचेकी बड़ी दालान फूल-पत्तियोंसे बहुत कुछ सजाई गई है। बीचमें खड़े रासबिहारी और विलासबिहारी यह जाँच रहे हैं कि कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रह गई है। इसी समय सद्यः समागत अतिथि लोग एक-एक करके प्रवेश करते हैं।]

रास०—(हाथ जोड़कर) स्वागतम्! स्वागतम्! आज केवल यह घर

ही नहीं, हमारा सारा गाँव आप लोगोंकी चरण-रजसे धन्य हो गया। आज मैं धन्य हूँ। आप लोग आसनोंपर विराजिए।

१ पु०—हम लोग भी उसी तरह धन्य हुए हैं रासबिहारी बाबू। ऐसे पुण्यकार्यमें बुलाये जाकर शामिल हो सकना जीवनका सौभाग्य है।

रास०—रास्तेमें कुछ क्लेश तो नहीं हुआ?

सब—ना ना, कुछ भी नहीं। कोई क्लेश नहीं हुआ।

रास०—होना भी नहीं चाहिए। यह तो उनकी सेवाके लिए, उनके कामके लिए ही आप लोगोंका आना हुआ है—मानव-जातिके परम कल्याणके लिए ही तो आज हम सब यहाँ जमा हुए हैं।

१ पु०—ओं स्वस्ति! ओं स्वस्ति! ओं स्वस्ति!

रास०—स्वर्गगत वनमाली बाबूकी कन्या विजया और उनके भावी दामाद विलासबिहारी—यह अनुष्ठान उन्हींका है। मैं कोई नहीं हूँ—कुछ भी नहीं हूँ। खाली इसे आँखोंसे देखकर पुण्य-संचय कर जाऊँ, यही मेरी एकमात्र कामना है। बेटा बिलास, बेटी विजयाको शायद अभी खबर नहीं हुई। कालीपदको बुलाकर कह दो कि पूजनीय अतिथि सब आ पहुँचे हैं।

विलास०—लेकिन उसे खबर पाना चाहिए था। (प्रस्थान)

२ पु०—सुना है, दयाल बाबू पहले ही आ गये हैं। कहाँ, वह तो—

रास०—दुर्भाग्यवश आते ही वह असुस्थ हो गये थे। पर आज अच्छे हैं। आते ही होंगे।

१ पु०—आचार्यका काम तो?

रास०—हाँ, वही करेंगे, यह तय हुआ है—यह लीजिए, नाम लेते ही वह आ गये—आइए आइए दयाल बाबू, आइए। शरीर तो अब सुस्थ है?

(दयालचंद्रका प्रवेश और सबका अभिवादन करना।)

रास०—मेरा भी शरीर दुर्बल है, स्वयं जाकर खबर नहीं ले सका, किन्तु उनसे (ऊपर देखकर) बराबर प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप शीघ्र आरोग्य हो जायँ; शुभ कर्ममें कोई विघ्न न हो।

[इसके बाद कुछ देर तक सबके कुशल-प्रश्न चलते हैं और प्रीति-संभाषण होता है। फिर सब अपनी अपनी जगहपर बैठ जाते हैं।]

रास०—मेरे बाल्य-सुहृद् वनमाली आज स्वर्गमें हैं। भगवानने उनको असमयमें ही अपने पास बुला लिया। भगवानकी मंगलमय इच्छाके विरुद्ध मेरी कोई नालिश नहीं है। मगर वह मुझे कैसा बनाकर छोड़ गये हैं, इसका अनुमान आप लोग मुझे बाहरसे देखकर नहीं कर पावेंगे। हम दोनो अभिन्न-हृदय मित्रोंकी भेंटकी घड़ी प्रतिदिन निकट होती चली आ रही है, यह आभास मुझे हर घड़ी मिल रहा है। तथापि उस परब्रह्मके चरणोंमें यही प्रार्थना है कि मेरी वह अन्तिम घड़ी और भी निकट पहुँचा दें।

[रासबिहारी कुर्तेकी आस्तीनसे आँखें पोंछकर आत्मसमाहितसे हो जाते हैं। उपस्थित अभ्यागत लोग भी वैसा ही भाव धारण कर लेते हैं। थोड़ी देर सब चुप रहते हैं।]

रास०—वनमाली आज हम लोगोंके बीच नहीं हैं—वह चले गये हैं। किन्तु मैं आँखें मूँदते ही देख पाता हूँ कि वह सामने खड़े मुसका रहे हैं।

[सभी आँखें मूँद लेते हैं। इसी समय विजया और विलास प्रवेश करते हैं। विजयाके मुखपर विषाद और वेदनाके चिह्न गहरे और घने हो आये हैं और वे स्पष्ट दिखाई देते हैं।]

रास०—यही उनकी एकमात्र कन्या विजया है। यह पिताके सभी गुणोंकी अधिकारिणी है!—और यह मेरा बेटा विलासविहारी है, जो कर्त्तव्य-पालनमें कठोर और सत्यका पक्ष लेनेमें निर्भीक है। ये दोनों बाहरसे अलहदा दिखाई देनेपर भी हृदयसे—हाँ, और वह शुभदिन भी निकट आ रहा है, जिस दिन फिर आप लोगोंकी चरणरजके कल्याणसे इन लोगोंका सम्मिलित नवीन जीवन धन्य होगा।

दयाल—(अस्फुट स्वरमें) ओं स्वस्ति।

रास०—बेटी विजया, यही तुम्हारे मन्दिरके होनेवाले आचार्य दयालचन्द्र हैं। इन्हें प्रणाम करो। और ये सब तुम्हारे सम्मानित पूजनीय अतिथि हैं। ये बहुत क्लेश स्वीकार करके तुम लोगोंके पुण्य कार्यमें सम्मिलित होने आये हैं। इन सबको नमस्कार करो।

[विजया हाथ जोड़कर नमस्कार करती है। वृद्ध दयाल बाबू विजयाके पास जाकर खड़े होते हैं।]

दयाल -(विजयाका हाथ पकड़कर) आओ बेटी, आओ। मुख देखकर ही जान पड़ता है, जैसे बेटी मेरी बहुत दिनोंकी जानी-पहचानी है !

[इतना कहकर खींचकर विजयाको अपने पास बिठाते हैं। अनेक होठ दबाकर मुसकाने लगे।]

रास०—दयाल बाबू, मेरे सहोदरसे अधिक स्वर्गीय बनमालीको यह शुभ-कर्म—एकमात्र कन्याका विवाह—आँखोंसे देख जानेकी बड़ी साध थी, केवल मेरे ही अपराधसे वह पूरी न हो पाई। (कुछ देर चुप रहकर एक लंबी साँस छोड़कर) लेकिन अब मुझे होश आ गया है, इसीसे अपने शरीरकी ओर देखकर इसी आगामी अगहनसे अधिक विलम्ब करनेका साहस नहीं होता। क्या जानें, मैं भी न कहीं यह ब्याह आँखोंसे विना देखे ही चला जाऊँ।

दयाल -(अस्फुट स्वरमें)—ओम् शान्तिः ! ओम् शान्तिः !

रास०—(विजयासे) बेटी, तुम्हारे पूज्य पिता और तुम्हारी सती साध्वी जननी दोनों पहले ही स्वर्ग सिधार चुके हैं; नहीं तो यह बात आज मुझे तुमसे न पूछनी पड़ती। लज्जा न करो बेटी, कह दो, आज इसी जगह इन पूजनीय अतिथियोंको इसी आगामी अगहनके महीनेमें ही फिर एक बार इस घरमें चरण-धूलि डालनेका निमंत्रण कर रखूँ।

विजया—(अव्यक्त कंठसे) बाबूजीकी मृत्युके एक सालके भीतर ही क्या—(आगे बोला नहीं जाता)

रास०—ओः, ठीक तो है बेटी, ठीक कहा तुमने। इसका मुझे खयाल ही न था। लेकिन तुम मेरी मा भी हो कि नहीं, इसीसे बूढ़े बेटेकी भूल बता दी। (विजया आँचलसे आँखें पोंछती है) यही होगा। लेकिन साल बीतनेमें भी तो अधिक विलम्ब नहीं है। (सबकी ओर देखकर) अच्छा आगामी वैशाखके महीनेमें ही यह शुभ कर्म सम्पन्न होगा। आप लोगोंके निकट हमारी यह बात पक्की रही—भैया विलासबिहारी, देर हो रही है; अब इन लोगोंके उस घरमें जानेकी व्यवस्था कर दो।—आइए आप लोग।

[विजयाको छोड़कर सभी जाते हैं। किन्तु दयाल बाबू क्षणभरमें ही लौट आते हैं।]

दयाल—(फिर आकर) बेटी विजया !

विजया—(चौंककर फिर अपनेको सँभालकर) आइए।

दयाल—वे सब दिघड़ावाले घर गये। विलास बाबू उनके ठहरनेकी व्यवस्था करनेके बाद अपने दफ्तरमें चले गये। मुझसे भी साथ चलनेको कहा, किन्तु मेरा जानेको जी नहीं चाहा। सोचा, इसी अवसरपर बेटी विजयासे दो-चार बातें कर लूँ। (एक कुर्सीपर बैठकर) खड़ी क्यों हो बेटी, तुम भी बैठो।

विजया—(सामनेकी कुर्सीपर बैठकर शंकित कण्ठसे) आप क्यों नहीं गये? आपको जानेमें तो धूप हो जायगी, दिन चढ़ जायगा।

दयाल—हो जाय। जरा-सी देर हो जानेमें मेरी कोई क्षति न होगी। तुम्हारे साथ दो घड़ी बात करनेके लोभको मैं दबा नहीं सका। मैंने बहुत देखा-सुना है; किन्तु तुम्हारी जैसी कम अवस्थामें धर्मके प्रति ऐसी निष्ठा मैंने नहीं देखी। भगवान्‌के आशीर्वादसे तुम लोगोंका यह महत् उद्देश्य दिन-दिन श्रीवृद्धिको प्राप्त हो। लेकिन बेटी, तुम्हारा मुख देखकर मुझे जान पड़ा, जैसे तुम्हारा मन सुखी नहीं है। क्यों ठीक है न?

विजया—आपने कैसे जान लिया?

दयाल—(मुसकाकर) इसका कारण यह है कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ बेटी। लड़के-बाले असुखी होते हैं तो बूढ़ोंको मालूम हो जाता है।

विजया—लेकिन सभी तो नहीं जान पाते दयाल बाबू!

दयाल—सो तो मैं नहीं जानता बेटी। लेकिन मुझे तो यही मालूम पड़ा और इसीलिए मैं तुमसे मिले विना नहीं जा सका, फिर लौट आया।

विजया—अच्छा ही किया दयाल बाबू।

दयाल—किन्तु एक मामलेमें तुमको सावधान कर दूँ। बूढ़े लोग बकना बहुत पसन्द करते हैं। मेरा भी जी चाहता है कि तुम्हारे पास बैठकर थोड़ी देर बक लूँ, लेकिन डरता हूँ, कहीं इससे तुम खीझ न उठो।

विजया—नहीं नहीं, खीझूँगी क्यों। आपकी जो इच्छा हो, कहिए न, सुनना मुझे अच्छा ही लगता है।

दयाल—लेकिन इसीलिए बूढ़ोंको अधिक प्रश्रय भी न देना बेटी। फिर रोक न पाओगी। और भी एक कारण है। मेरे एक लड़की हुई थी, जो थोड़ी ही उम्रमें मर गई। अगर वह जीती रहती तो तुम्हारी ही अवस्थाकी होती। तुम्हें जबसे देखा है, तबसे बस उसीका खयाल आ रहा है।

विजया—आपके शायद और बेटी नहीं है?

दयाल—बेटी भी नहीं है, बेटा भी नहीं है, केवल हमी बुढ़िया बूढ़ी जीवित हैं। एक भानजीको हमने पाला-पोसा था। उसका नाम नलिनी है। कालिजमें छुट्टी होनेके कारण वह भी मेरे साथ यहाँ आई है। कुछ अस्वस्थ है, नहीं तो—

(सहसा विलासका प्रवेश।)

विलास०—(विजयाके प्रति रूढ़ भावसे) वे लोग चले गये; तुमने एक बार उनकी खबर तक न ली? इसे कर्त्तव्यकी अवहेलना कहते हैं! यह मैं बिल्कुल पसन्द नहीं करता। (दयालके प्रति उससे भी अधिक कठोर भावसे) आपसे भी मैंने उन लोगोंके साथ जानेको कहा था! सो वहाँ न जाकर यहाँ बैठे गपशप कर रहे हैं।

दयाल—(अप्रतिभ भावसे) बिटियाके साथ दो-चार बातें करनेको—अच्छा तो अब मैं जाता हूँ।

विजया—नहीं। आप बैठिए। देर हो गई है, यहाँ खा-पीकर फिर जा सकेंगे। (विलाससे) इनके साथ जानेसे क्या उन लोगोंको विशेष सुविधा होती?

विलास०—उनकी देखभाल कर सकते।

विजया—यह इनका काम नहीं है। उन लोगोंकी तरह दयाल बाबू भी मेरे अतिथि हैं।

विलास०—नहीं, इन्हें अतिथि नहीं कहा जा सकता। अब यह इस्टेटके कर्मचारी हैं। इन्हें मासिक देना होगा।

[विजयाका मुख क्रोधसे लाल हो उठा; पर उसने शान्त स्वरमें ही कहा—-]

विजया—दयाल बाबू हमारे मन्दिरके आचार्य हैं। उनके इस सम्मानको भूल जाना अत्यन्त क्षोभकी बात है विलास बाबू!

विलास०—(कटु स्वरमें) उस सम्मानका बोध मुझको है, तुम्हें याद न दिलाना होगा। लेकिन दयाल बाबू केवल आचार्य ही नहीं हैं—इनका और काम भी है। वह स्वीकार करके ही यह आये हैं।

दयाल—(व्यस्त भावसे खड़े होकर) बेटी, मुझसे अपराध हुआ—मैं अभी जाता हूँ।

विजया—नहीं। आप बैठिए, आपको खाकर जाना होगा। और वेतन तो वह नहीं देते, मैं देती हूँ। अगर अपने साथ दो घड़ी बात करनेको मैं बुरा नहीं समझती तो समझना होगा कि आपके कर्त्तव्य-पालनमें त्रुटि नहीं हुई, फिर विलास बाबूकी कर्त्तव्यकी धारणा कुछ भी क्यों न हो।

विलास०—ना, कर्त्तव्यकी धारणा हम लोगोंकी एक नहीं है, और मैं तुमसे कहनेको लाचार हूँ कि तुम्हारी धारणा गलत है।

विजया—तो फिर वह गलत धारणा ही मेरे यहाँ चलेगी विलास बाबू।

विलास०—तो क्या तुम्हारी गलत धारणा ही स्वीकार कर लेनी होगी?

विजया—स्वीकार कर लेनेको तो मैंने कहा नहीं; मैंने तो यह कहा है कि वही यहाँ चलेगी।

विलास०—तुम जानती हो, इससे मेरा अपमान होता है।

विजया—(तनिक हँसकर) सम्मान क्या अकेले आपकी ही ओर रहेगा?

दयाल—(व्यस्त भावसे उठकर खड़े होकर) बेटी, अब मैं जाता हूँ। जाकर देखूँ, उन लोगोंको कोई असुविधा तो नहीं हो रही है।

विजया—ना, यह न होगा। हमारी बातचीत अभी समाप्त नहीं हुई, आप बैठिए। (जरा ऊँचे स्वरमें) कालीपद!

कालीपदने दरवाजेके पास सिर निकालकर कहा—क्या है माजी?

विजया—परेशकी मासे कह दो कि दयालबाबू यहीं भोजन करेंगे। मेरे सोनेके कमरेके बरामदेमें उनके लिए जगह कर दे।—चलिए दयाल बाबू, हम लोग ऊपर चलके बैठें।

[विजया और उसके पीछे दयाल बाबू धीरे-धीरे जाते हैं। विलास क्षणभर उस ओर लाल लाल आँखोंसे देखते रहकर फिर चल देता है।]

चतुर्थ दृश्य

स्थान—घरके एक हिस्सेका पटा हुआ बरामदा

[नरेन्द्रका प्रवेश। साहबी पोशाकमें है। टोपी उतारकर बगलमें दबाता और हाथकी छड़ी एक ओर खड़ी कर देता है।]

नरेन्द्र—(इधर उधर ताककर) ओः—कहीं जरा-सी भी हवा नहीं, हवाका नाम-निशान नहीं है। फिर इस विजातीय पोशाकने जैसे और व्याकुल कर दिया है। इधर क्या कोई नहीं है? लो, वह कालीपद आ रहा है—

(कालीपदका प्रवेश)

नरेन्द्र—कालीपद, क्या अपनी मालकिनको जरा खबर दे सकते हो?

कालीपद—खबर देनेकी जरूरत नहीं, माजी इधर ही आ रही हैं। भीतर चलके बैठिए न बाबूजी?

नरेन्द्र—ना भैया, भीतर घुसकर अपना दम घुटवाना नहीं चाहता मैं। यहींसे काम करके भागूँगा। बारह बजेकी गाड़ीसे ही लौटना होगा।

कालीपद—हाँ बाबूजी, आज बड़ी गरमी है, कहीं भी हवा नहीं चल्ती। अच्छा कहिए तो यहीं एक कुर्सी बैठनेके लिए ला दूँ, बैठिए।

[कालीपदने कुर्सी ला दी। नरेन्द्रने बैठकर टोपी पैरोंके पास रखकर सिर उठाकर कहा—]

नरेन्द्र—अरे सामनेकी वह खिड़की जरा खोल तो दो, हवा शायद आवे, साँस ले सकूँ, प्राण बचें।

कालीपद—वह जकड़ गई है, खोले नहीं खुल्ती। इस वक्त बढ़ई कहाँसे लाऊँ बाबू?

नरेन्द्र—बढ़ई या मिस्त्रीका इसमें क्या काम है रे? खिड़की-दर्वाजे क्या तुम बढ़ईसे खुल्वाते हो और रातको कीलें ठोककर बंद कर देते हो?

कालीपद—जी नहीं। यही खिड़की खोले नहीं खुल्ती। मालकिन कई दिनोंसे बढ़ई बुलाकर इसे खुलवानेको कह रही हैं।

नरेन्द्र—ऐसी बात तो मैंने कहीं नहीं सुनी। कहाँ, देखूँ जरा। (पास जाकर पल्ला खींचकर खिड़की खोल देता है) जरा कसकर पल्ले बैठ गये थे, बस। अच्छा, अब जरा अपनी मालकिनको तो बुला दो।

कालीपद—लीजिए, वह आ रही हैं।

[विजयाका प्रवेश, साथ ही नरेन्द्रका उधर घूमकर देखना]

नरेन्द्र—नमस्कार। वाह—इस समय आप कैसी सुन्दर दिखाई दे रही हैं! जो भी चित्र बनाना जानता है, उसीको चित्र बनानेका जी चाहेगा।

विजया—जाओ कालीपद, मेरे बैठनेके लिए कुछ ले आओ, और बाबूके लिए चाय बनानेको कह दो।—जान पड़ता है, अभी आपने चाय नहीं पी।

नरेन्द्र—ना। कलकत्तेसे सवेरे ही चल दिया था। स्टेशनसे सीधे यहीं आ रहा हूँ।　　　(कालीपदका प्रस्थान)

विजया—आपको क्या मैंने अपनी तसवीर बनानेका बयाना लेनेके लिए बुलाया है जो आपने मुझे इस तरह अपदस्थ किया?

नरेन्द्र—अपदस्थ कहाँ किया?

विजया—नौकर-चाकरोंके सामने क्या इस तरह कहा जाता है! आपमें क्या समझ बिल्कुल नहीं है?

नरेन्द्र—(लज्जित मुखसे) हाँ, यह ठीक है। सचमुच गलती हो गई।

विजया—अब कभी ऐसा न हो।

(कुर्सी लेकर कालीपदका प्रवेश।)

कालीपद—कह आया बिटिया रानी। साथ ही कुछ खानेकी चीज लानेको भी कह आऊँ?

विजया—हाँ, कह दो जाकर (एकाएक खिड़कीपर नजर पड़ जाती है।)—भला एक बात तो सुनो कालीपद! तुमने किससे खुलवाई यह खिड़की?

कालीपद—(नरेंद्रकी ओर इशारा करके) आपने ही खोली है।

[इतना कहकर वह बाहरसे एक छोटी तिपाई लाकर नरेन्द्रके पास रखकर चला जाता है।]

विजया—(नरेन्द्रसे आश्चर्यके साथ) आपने खोला? कैसे खोला?

नरेन्द्र—कैसे क्या, हाथसे खींचकर।

विजया—खाली हाथसे खींचकर खोल लिया? और ये सब लोग कहते थे कि हाथसे नहीं खुल सकती। आपके हाथ क्या लोहेके हैं?

नरेन्द्र—(हँसकर) हाँ, मेरी उँगलियाँ कुछ सख्त हैं।

विजया—(हँसी दबाकर) आपका माथा ही क्या कम सख्त है! जरा-सी टक्करसे किसीका भी माथा फट सकता है।

[नरेन्द्र जोरसे हा–हा–हा कर उठता है। इसके बाद जेबसे नोट निकालकर तिपाईपर रखता हुआ कहता है—]

नरेन्द्र—ये लीजिए अपने दो सौ रुपए। दीजिए मेरी वह टूटी मशीन। (जरा हँसकर) मैं जुआचोर हूँ, ठग हूँ, और न जाने क्या क्या गालियाँ इन कुछ रुपयोंके लिए आपने मुझे कहला भेजी थीं। लीजिए अपने रुपए, दीजिए मेरी चीज।

विजया—ठग, जुआचोर वगैरह मैंने किससे कहला भेजा था ?

नरेन्द्र—जिसके हाथ रुपए भेजे थे, उसीने तो यह सब कहा था।

विजया—उस आदमीके मुँहसे और क्या कहला भेजा था, कुछ याद है ?

नरेन्द्र—ना, मुझे याद नहीं है। खैर होगा, अब वह मशीन लानेको कह दीजिए। मैं दोपहरकी ट्रेनसे ही कलकत्ते लौट जाऊँगा। और हाँ, मैं कलकत्तेमें ही एक नौकरी पा गया हूँ। बहुत दूर नहीं जाना पड़ा।

[विजयाका चेहरा चमक उठता है।]

विजया—आपके भाग्य अच्छे हैं। रुपए क्या उन्होंने ही दिये हैं ?

नरेन्द्र—हाँ, लेकिन मेरा वह माइक्रोस्कोप लानेके लिए कह दीजिए। मेरे पास अधिक समय नहीं है।

विजया—लेकिन क्या आपके साथ यही शर्त हुई थी कि आप दया करके रुपए लाये हैं, इसलिए चटपट मशीन लौटा देनी होगी ?

नरेन्द्र—(लज्जित होकर)—ना, ना, यह बात नहीं है। मगर यह टूटा है न, और आपके किसी कामका नहीं है, इसीसे मैंने सोचा कि आप लौटा देनेके लिए राजी हो जायँगी।

विजया—ना, मैं राजी नहीं हूँ। मैंने जँचाकर देखा है, उसे मैं अनायास ही चार सौ रुपएमें बेच सकती हूँ। दो सौ रुपएमें क्यों दूँ ?

नरेन्द्र—(सीधा होकर उठ बैठता है) अच्छा, आप बेच लीजिए। मुझे न चाहिए। जो दो सौ रुपएके दो दिन बाद ही चार सौ रुपए माँगता है, उससे मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।

[विजयाने सिर झुकाकर बड़ी मुश्किलसे हँसीको दबाया।]

नरेन्द्र—मैं नहीं आता यदि जानता कि आप एक शायलाक * हैं !

विजया—शायलाक ? लेकिन जब कर्जमें आपका घर-द्वार, आपका सर्वस्व मैंने हड़प लिया, तब क्या आपने नहीं समझा था कि मैं शायलाक हूँ ?

नरेन्द्र—नहीं समझा था; क्योंकि उसमें आपका कोई हाथ न था। वह काम आपके पिताजी और मेरे बाबूजी, दोनों कर गये थे। हममेंसे कोई उसके लिए अपराधी नहीं है।—अच्छा, अब चलता हूँ।

विजया—जायँगे कैसे ? आपके लिए चाय बनाने गया है न ?

नरेन्द्र—मैं चाय पीने नहीं आया।

विजया—मगर जिसके लिए आये थे, वह तो सचमुच ही नहीं हो सकता। चार सौ रुपएकी चीज आपको दो सौ रुपएमें कौन देगा ? आपको लज्जा मालूम होनी चाहिए।

नरेन्द्र—मुझे लज्जा मालूम होनी चाहिए ? ओः—आप तो खूब आदमी हैं !

विजया—हाँ, पहचान रखिए। आयंदा फिर ठगनेकी कोशिश न करिएगा !

नरेन्द्र—ठगना मेरा पेशा नहीं है।

विजया—तो फिर क्या पेशा है ? डाक्टरी ? हाथ देखना जानते हैं ?

नरेन्द्र—मैं क्या आपके उपहासका पात्र हूँ ? रुपए आपके यहाँ ढेरों रह सकते हैं—किन्तु रुपएके जोरसे किसीकी हँसी उड़ानेका अधिकार किसीको नहीं मिल जाता। आप जरा समझ-बूझकर मुँहसे बात निकालिएगा।

[नरेन्द्र अपनी लाठी उठाकर जानेको उद्यत होता है।]

विजया—नहीं तो क्या होगा, कहिए न ? आपके हाथोंमें जोर ही नहीं, लाठी भी है, यही तो ?

नरेन्द्र—(लाठी फेककर हताश भावसे बैठ जाता है।) छिः छिः—आप

---

* शेक्सपियरके नाटकका एक यहूदी पात्र, जो बड़ा लोभी था। उसने एक आदमीको इस शर्तपर ऋण दिया था कि नियत समय पर रुपया अदा न किया गया तो वह ऋणीके शरीरसे सेरभर मांस काट लेगा। अन्तको जब अदालतने कहा कि नहीं मानते तो मांस काट लो, पर रक्त एक बूँद न गिरे; क्योंकि शर्त केवल मांसकी है, तब वह परास्त हुआ।—अनुवादक।

मुँहमें जो आता है, वही कह देती हैं। आपसे मैं जीत नहीं सकता।

विजया—यह बात याद रखिएगा। लेकिन जब आपहीके कारण मुझे देर हो गई, घरसे न निकल सकी, तब आपका भी जाना नहीं होगा। मगर आप निश्चय ही हाथ देखना जानते हैं।

नरेन्द्र—हाँ, जानता हूँ। किसका हाथ देखना होगा? आपका?

विजया—(सहसा अपना हाथ आगे बढ़ाकर) देखिए तो, मुझे ज्वर है या नहीं!

नरेन्द्र—(नाड़ी देखकर) सत्य ही आपको बुखार है। मामला क्या है?

विजया—कल रातको थोड़ा बुखार हो आया था! लेकिन वह कुछ नहीं है! मैं अपने लिए चिन्ता नहीं करती। लेकिन उस परेश छोकरेको तो आप जानते हैं—तीन दिनसे उसे खूब बुखार चढ़ा है। यहाँ कोई अच्छा डाक्टर नहीं है!—कालीपद! (कालीपदका प्रवेश।)

विजया—परेशकी मासे कहो, परेशको यहाँ ले आए।

नरेन्द्र—नहीं, यहाँ लानेकी जरूरत नहीं। कालीपद, चलो तो, परेश जहाँ लेटा है, वहीं मुझे ले चलो।

कालीपद—चलिए।

[नरेन्द्र और कालीपदका प्रस्थान। दूसरी ओरसे नलिनीका प्रवेश।]

नलिनी—(विजयासे) नमस्कार!—मेरा नाम नलिनी है। दयाल बाबू मेरे मामा होते हैं।

विजया—ओ, आप हैं? बैठिए। मंदिरकी स्थापनावाले दिन आप असुस्थ थीं, इसीसे परिचय करनेके लिए मैंने आपको तकलीफ नहीं दी। उसके बाद ही सुना कि आपकी मामी बीमार हैं, इस कारण आप उनके पास चली गई हैं।—किन्तु जान पड़ता है, जैसे पहले कहीं आपको देखा है। अच्छा, आप क्या बेथून (कालिज) में पढ़ती थीं?

नलिनी—जी हाँ। लेकिन मुझे तो याद नहीं आ रहा है।

विजया—याद न आनेमें भी कोई आपका दोष नहीं है। मैं अक्सर गैरहाजिर रहा करती थी। अन्तको सभी विषयोंमें फेल होकर मैंने पढ़ना छोड़ दिया। सुना, अब आप B. Sc. (बी. एस-सी.) की परीक्षा दे रही हैं।

नलिनी—हाँ, अब मुझे याद आ रहा है आप एक बहुत बड़ी शानदार गाड़ीमें बैठकर कालिजमें आती थीं।

विजया—नजरमें पड़ने लायक और कुछ तो है नहीं, इसीसे गाड़ीसे ही लोगोंकी नजर अपनी ओर खींचती थी। इसके लिए क्षमा करना उचित है।

नलिनी—यह न कहिए। नजर पड़ने लायक आपमें भी अगर कुछ न हो तो कहना होगा कि जगत्‌में थोड़े ही लोगोंमें ऐसी विशेषता है।—अच्छा, डाक्टर मुखर्जी कहाँ गये ?

विजया—रोगीको देखने गये हैं, बस आते ही होंगे ! लेकिन आपने कैसे जाना कि वह यहाँ आये हैं मिस दास ? (नरेन्द्रका प्रवेश।)

नलिनी—लीजिए, ये डाक्टर मुखर्जी आ गये। (विजयासे) हम लोग कलकत्तेसे एक ही गाड़ीमें आये हैं। स्टेशनपर आकर देखा, डा० मुखर्जी खड़े हैं। उस दिन मंदिरमें दैव-संयोगसे उनसे मेरी जान-पहचान हो गई थी। कुछ उनका सामान पड़ा रह गया था, वही लेने आये थे। आज फिर हावड़ा स्टेशनपर अचानक उनसे भेंट हो गई। उन्होंने भी कहा कि वह यहाँ ठहर नहीं सकेंगे, इसी बारह बजेकी गाड़ीसे लौटेंगे, और मुझे भी आज ही कलकत्ते अवश्य लौटना चाहिए।

विजया—(हँसकर) आप लोगोंका केवल दैवसंयोगसे परिचय और एक गाड़ीसे आना ही नहीं हुआ, दैवसंयोगसे एक ही गाड़ीसे लौटना भी होगा ! ऐसा दैवसंयोग तो एक साथ संसारमें देखा नहीं जाता।

नरेन्द्र—इसके माने ?

विजया—(नलिनीसे) इसके माने उन्हें गाड़ीमें समझा तो देना मिस दास।

नलिनी—(नरेन्द्रसे) आप यहाँका सब काम कर चुके ?

विजया—नहीं, काम पूरा नहीं कर पाये। यहाँ गृहस्थ सजग था। किन्तु उसके बदले एक रोगी पा गये हैं। वही कहावत हुई कि "भरा डूबिर मुष्टिलाभ।" *

---

* इस बँगला कहावतका मतलब यह है—जिसका सब कुछ नष्ट हो गया या कुछ नहीं रहा, उसकी कुछ साधारण चीजका बच जाना।

नरेन्द्र—(बिगड़कर) आपका जितना जी चाहे मेरा उपहास कर लीजिए; किन्तु सजग गृहस्थ भी एक दिन ठगा जाता है, यह भी जान रखिए। मैं आपको चार सौ रुपए ही ला दूँगा; लेकिन यह अन्याय एक दिन आपको खटकेगा। खैर, अब देर हो रही है। मिस दास, चलिए, हम लोग चलें।

विजया—परेशकी बीमारीके बारेमें तो आपने कुछ बताया ही नहीं ?

नरेन्द्र—उसकी दशा कुछ विशेष अच्छी नहीं है। उसे बहुत अधिक बुखार है। पीठ और गलेमें दर्द है। इस तरफ चेचकका जोर है। जान पड़ता है, परेशको भी चेचक निकलेगी।

विजया—(डरकर) चेचक क्यों निकलेगी ?

नरेन्द्र—क्यों निकलेगी, यह बतानेमें बहुत कुछ कहना पड़ेगा। खैर, वह चाहे जो हो, उसकी मासे कह दीजिए, जरा सावधान रहे। मैं कल या परसों रुपए लेकर आऊँगा—अवश्य अगर मिल गये तो। तब उसे देख जाऊँगा।

विजया—(व्याकुल उतरे हुए चेहरेसे) नहीं तो नहीं आइएगा ? मुझे भी निश्चय चेचक निकलेगी नरेन्द्र बाबू। कल रातसे मुझे भी खूब बुखार है—मेरे भी शरीरमें भयानक व्यथा है।

नरेन्द्र—व्यथा भयानक नहीं है, भयानक है आपके मनका भय। अच्छा अगर थोड़ा-सा बुखार ही हो आया हो तो उससे क्या ? चेचक कुछ लोगोंको निकली है, इसलिए गाँवके सभी लोगोंको चेचक निकलेगी, ऐसा सोचना ठीक नहीं।

विजया—लेकिन अगर निकल आई तो मेरा कौन है ? मुझे कौन देखे-सुनेगा ?

नरेन्द्र—देखने-सुननेवाले बहुत-से लोग मिल जायगे, इसके लिए चिन्ता न कीजिए। लेकिन मैं कहता हूँ, आपको कुछ न होगा।

विजया—न हो तो अच्छा ही है। सचमुच ही मैं बहुत असुस्थ हूँ, तो भी सवेरे उठकर जोर करके सारी सुस्ती झाड़-झूड़कर जरा बाहर जा रही थी।

नरेन्द्र—ना, आज आप कहीं भी न जा सकेंगी। जाकर आप चुपचाप लेट रहिए, मैं कल फिर आऊँगा।

विजया—रुपए न मिलनेपर भी आवेंगे न ?

नरेन्द्र—हाँ, न मिलनेपर भी आऊँगा।

विजया—भूल तो न जावेंगे?

नरेन्द्र—जी नहीं। मैं भुलक्कड़ या अनमनी प्रकृतिका आदमी अवश्य हूँ; किन्तु आपकी बीमारीकी बात निश्चय ही न भूलूँगा।

[कालीपदका प्रवेश।]

कालीपद—माजी, थाली परोसी रखी है।

विजया—(नलिनीको दिखाकर) इनके लिए भी?

कालीपद—हाँ माजी, दोनों जनोंके लिए।

विजया—मैं चलकर देखती हूँ, क्या क्या परोसा है। अगर फिर कभी मौका न मिला तो आज तो पास बैठकर आप दोनों जनोंको खिला-पिला लूँ।

नलिनी—मिस राय, आप यह क्या कह रही हैं? डर काहेका है?

विजया—क्या जानें, आज मुझे डर ही मालूम पड़ रहा है। जान पड़ता है कि मेरी बीमारी बहुत अधिक बढ़ जायगी।—नरेन्द्र बाबू, आज आप ठहर न जाइए यहाँ!

नरेन्द्र—अच्छा मैं रातकी ही ट्रेनसे जाऊँगा। लेकिन आपको मेरी बात सुननी होगी। आप हिल-डुल न पावेंगी, और अभी जाकर सो रहिए।

विजया—ना, यह मैं न मानूँगी। आप लोगोंके खानेकी देखभाल आज जरूर करूँगी। उसके बाद जाकर सो रहूँगी।

[प्रस्थान। साथ ही कालीपदका भी प्रस्थान।]

नलिनी—कैसी व्याकुल विनती है! डाक्टर मुखर्जी, मैं जाऊँगी, लेकिन आप आज रह जाइए। जाइए नहीं।

नरेन्द्र—इस बेला तो हूँ ही। मामाके घरसे जानेके पहले शामको और एक बार देख जाऊँगा। बुखार तेज है, डर है कि कुछ दिन कष्ट देगा।

नलिनी—कष्ट देगा? तब तो बड़ी मुश्किल है।

नरेन्द्र—मालूम तो यही पड़ता है।

नलिनी—बड़ी अच्छी लड़की है। आपके ऊपर उसे कितना विश्वास है! जान नहीं पड़ता कि यह आपको बे-घर-बारका कर दे सकती है।

नरेन्द्र—(हँसकर) देखा तो गया कि कर सकती है। बात यह है कि

बड़े घरकी लड़की गरीबके बारेमें बहुत कम सोचती है। घर तो गया ही, आखिरी सहारा वह माइक्रोस्कोप जब विवश होकर बेचना पड़ा तो उसके चौथाई दाम—केवल दो सौ रुपए देकर विना किसी संकोचके खरीद लिया, साथमें ऊपरी बखशिशके तौर पर ठग, जुआचोर आदि विशेषण दिये! आज उसे ही जब दो सौ रुपए वापस करके लौटा लेना चाहा तब अनायास कह दिया कि चार सौसे कम न लेंगी, अतएव और भी दो सौ चाहिए। सो दया-मया है, यह मानना ही होगा!

नलिनी—मुझे विश्वास नहीं होता डाक्टर मुखर्जी—कहींपर शायद कुछ भारी भूल है।

नरेन्द्र—भूल है? ना, कहीं कुछ भूल नहीं है मिस नलिनी, सब जलकी तरह साफ है—स्पष्ट है।

नलिनी—(सिर हिलाकर) लेकिन ऐसा हो ही नहीं सकता डाक्टर मुखर्जी! औरतें इतनी बड़ी विनती उससे कर ही नहीं सकतीं—इस तरह उसकी ओर वे देख ही नहीं सकतीं।

नरेन्द्र—ऐसा ही होगा। औरतोंकी बात तो आप ही अच्छी तरह जानती हैं; लेकिन मैं जितना जान पाया हूँ, वह तो बहुत ही कठोर हैं—बहुत ही कठिन है।

[कालीपदका प्रवेश]

कालीपद—चलिए। भोजन तैयार है। माजीने बुलाया है।

नरेन्द्र—चलो, चलते हैं। [सबका प्रस्थान।]

[दयाल और रासबिहारीका बातें करते हुए प्रवेश।]

रास०—इस मन्दिरकी स्थापनाके लिए लगातार परिश्रम करके विलास कितना थक गया था, यह हम समझ ही नहीं पाये। उस दिन उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर, डरकर मैंने पूछा—बिलास, क्या हुआ? ऐसा क्यों कर रहे हो? उसने कहा—'बापू, आज मैंने अन्याय किया है—दयाल बाबूको कठोर बात कह डाली है! विजयाको भी कुछ सख्त कहा है मैंने—उसने भी मुझे कहा है—मगर इसके लिए मुझे खेद नहीं है। खेद तो मुझे यह है कि मैंने दयाल बाबूको क्या कहते कहते क्या कह दिया! शायद वह अब खफा होकर हमारे यहाँ आचार्यका काम नहीं करेंगे।' इसके साथ ही उसकी दोनों

आँखोंसे झरझर करके आँसू बहने लगे। मैंने कहा—डरो नहीं भैया, अपराध अगर बन ही पड़ा हो, तो वह पश्चात्तापके आँसुओंसे धुल गया। (आँखें मूँदकर सिर झुकाये रहनेके बाद) और वही तो हुआ दयाल बाबू, आपकी उदारताको समझ पाकर विलासने मुझसे कहा—बापू, उस दिन तुमने सच ही कहा था कि दयाल बाबूका चित्त सम्पूर्ण रूपसे भगवानके प्रेममें मग्न है; उनका हृदय करुणा और ममतासे भरा है। वहाँ हम जैसे छोकरोंकी बातें प्रवेश नहीं कर सकतीं।

दयाल—लेकिन मैं सच कहता हूँ, उस दिनकी बातका मुझे कुछ भी खयाल नहीं है। आप यह कह दीजिएगा विलास बाबूसे।

रास०—बाबू नहीं! बाबू नहीं! आपके लिए वह केवल विलास है—विलासबिहारी।—अरे कौन है वहाँ? कालीपद?

[कालीपदका प्रवेश।]

रास०—विजया बेटी क्या इस समय अपने पुस्तकालयके कमरेमें है?

कालीपद—जी नहीं, वह सोनेके कमरेमें लेटी हैं। उन्हें बुखार है।

रास०—बुखार? बुखार बताया किसने?

कालीपद—डाक्टर बाबूने।

रास०—डाक्टर बाबू कौन?

कालीपद—नरेन बाबू आये थे, वही नाड़ी देखकर बोले—बुखार है। कहा—चुपचाप जाकर लेट रहो।

रास०—नरेन? वह किस लिए आया था? कब आया था?—कालीपद, बिटियाको जाकर खबर दो कि मैं आया हूँ और उन्हें देखने आ रहा हूँ।

दयाल—मैं भी बिटिया रानीको जरा देखना चाहता हूँ कालीपद। बुखार सुनकर बड़ी चिन्ता हुई।

कालीपद—मगर माँजीने मुझे मना कर दिया है। कह दिया है कि वह खुद न बुलावें, तब तक कोई उनके पास न जाय। मेरे जानेसे संभव है, वह खफा हों।

रास०—खफा होगी? यह कैसी बात है? उसे बुखार जो है! सारा भार, सारी जिम्मेदारी तो मेरे ही सिरपर है! कोई दौड़कर जाय, विलासको खबर दे आवे। आज उसका भी जी अच्छा नहीं है, पर वह घरमें ही है।

लेकिन विजयाके कहनेसे क्या होता है; विलास जल्दी आकर कुछ व्यवस्था करे। शहरमें गाड़ी भेजकर हम लोगोंके अकिंचन बाबूको बुला भेजे। न हो, कलकत्तेसे—हमारे प्रेमांकुर डाक्टरको—चलिए, चलिए दयाल बाबू, हम लोग चलें, समय नष्ट न हो।

दयाल—घबराइए नहीं रासबिहारी बाबू, जगदीश्वरकी कृपासे डरनेकी कोई बात नहीं है। नरेन्द्र जब खुद देख गया है, तब अगर कुछ चिन्ताकी बात होती तो निश्चय ही आपको खबर करनेको कह देता।

रास०—नरेन देख गया है ? वह क्या जाने !

[कहते कहते तेजीसे चल देते हैं भीतरकी ओर। पीछे पीछे दयाल बाबू और कालीपद भी जाते हैं।]

—— ——

पञ्चम दृश्य

स्थान—विजयका शयन-कक्ष

[असुस्थ विजया बिछौनेपर पड़ी है। कुछ ही फासले पर बाप-बेटे—रासबिहारी और विलासबिहारी, दोनों बैठे हैं। कमरेमें बैठनेके लिए और कोई कुर्सी या आसन नहीं है। रोगीके लिए आवश्यक सभी सामान पास ही एक छोटी-सी मेजपर रखा है। व्यस्त भावसे पैर रखते हुए नरेन्द्रका प्रवेश। उसके मुखपर उत्कण्ठा झलक रही है।]

नरेन्द्र—मामला क्या है ? अभी कालीपदके मुँहसे सुना कि बुखार कुछ बढ़ गया है। खैर बढ़ने दीजिए, कोई चिन्ताकी बात नहीं है—इस समय क्या हाल है ?

विलास—आप सवेरे आकर उनको चेचकका भय दिखा गये थे ?

विजया—(क्षीण स्वरमें, दोनों हाथ बढ़ाकर) बैठिए। (नरेन्द्रको उसी बिछौनेके एक सिरेपर मजबूरन बैठना पड़ा।) अब तक कहाँ थे ? इतनी देर करके क्यों आये ? मैं बड़ी देरसे आपकी राह देख रही थी। (विलासका चेहरा क्रोधसे भयानक हो उठा। विजया नरेन्द्रका हाथ खींचकर अपने हृदयपर रख

लेती है।) जब तक मैं आराम न हो जाऊँ, तब तक कहीं न जानेका वादा कीजिए। आप चले जायँगे तो शायद मैं नहीं बचूँगी।

[नरेन्द्र हतबुद्धि होकर सिर उठाता है और साथ ही दो जोड़ी भयानक नेत्रोंसे उसके नेत्र टकरा जाते हैं। कालीपद इसी बीचमें पर्देको जरा हटाकर भीतर झाँकता है।]

विलास — (क्रोधसे गरज उठता है) ए सुअर, ए जानवर, एक कुर्सी ला!

[कालीपद भयसे हतबुद्धि-सा हो जाता है।]

रास० — (गम्भीर स्वरमें) उस तरफसे एक कुर्सी ले आओ कालीपद। बाबूको बैठनेके लिए दो। [नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ, और रासबिहारी शान्त कण्ठसे विलाससे बोले—] बीमार आदमीका कमरा है—इस तरह hasty (उतावले) न होओ। Temper lose (मस्तिष्कके सन्तुलनको खोना) करना किसी भले आदमीको शोभा नहीं देता।

विलास—इसमें आदमी टेम्पर लूज (Temper lose) नहीं करता, तो और काहेमें करता है, आप ही बताइए? हरामजादा नौकर, न कहना न सुनना, ऐसे एक असभ्य आदमीको भीतर ले आया, जो भद्र महिलाका सम्मान तक रखना नहीं जानता।

[विजयाकी ज्वरकी तन्द्रा अचानक उचट जाती है। नरेन्द्रका हाथ छोड़कर वह घूमकर दीवालकी ओर मुँह कर लेती है।]

रास०—मैं सब समझता हूँ विलास—इस मामलेमें तुमको क्रोध आना अस्वाभाविक नहीं है, बल्कि बहुत ही स्वाभाविक है—यह भी मैं जानता हूँ; लेकिन तुमको यह सोचना चाहिए था कि सभी इच्छा करके या जान-बूझकर अपराध नहीं करते। सभी अगर भद्र पुरुषोंकी रीति, नीति, आचार-व्यवहार जानते तो फिर चिन्ता ही क्या थी? इसी लिए क्रोध न करके शान्त भावसे मनुष्यके दोषों या त्रुटियोंका संशोधन कर देना होता है।

विलास० — ना बापू, इस तरहकी Impertinence (उद्दण्डता या बेअदबी) सही नहीं जाती। इसके सिवा हमारे इस घरके नौकर-चाकर जैसे बदतमीज हैं वैसे ही बदजात भी हो गये हैं। कल ही मैं इन सब नालायकोंको निकाल बाहर करूँगा।

रास०—इसका मन जब खराब होता है तब क्या क्या बक जाता है, कुछ ठीक नहीं। और लड़केको ही क्या दोष दूँ; मैं बूढ़ा आदमी हूँ, फिर भी बिटियाके बुखारकी बात सुनकर कैसा चंचल हो उठा था!—घरमें ही एक आदमीके शीतला निकलीं, उसपर यह लड़कीको डरा गये!

नरेन्द्र—ना, मैं किसी तरहका भय नहीं दिखा गया।

विलास०—(कुछ चीखकर) अलबत भय दिखा गये थे। कालीपद इसका गवाह है।

नरेन्द्र—कालीपदने गलत सुना है।

[विलास पागलकी तरह उठकर नरेन्द्रकी ओर बढ़ना चाहता है।]

रास०—आः क्या करते हो विलास! यह जब अस्वीकार करते हैं, तब क्या कालीपदकी बातका विश्वास करना होगा? निश्चय ही इन्हींका कहना सच है।

विलास०—तुम समझते नहीं हो बापू—(विलास बाधा देना चाहता है)

रास०—इस मामूली बीमारीमें ही होशहवास न खोओ विलास, स्थिर होओ! मंगलमय जगदीश्वर केवल हम लोगोंकी परीक्षा लेनेके लिए ही आपत्ति-विपत्ति, बीमारी वगैरह भेज देते हैं, इस बातको मेरी समझमें नहीं आता कि विपत्तिमें पड़ते ही तुम जवान लोग सबसे पहले क्यों भूल जाते हो! (कुछ स्थिर रहकर) और अगर गल्तीसे उन्होंने बीमारीकी बात कह ही दी तो इससे क्या? कितने ही बड़े-बड़े इम्तिहान पास किये हुए अच्छे अच्छे विचक्षण डाक्टरोंको भी भ्रम हो जाता है—यह तो अभी लड़के ही हैं। खैर छोड़ो इस बातको। (नरेन्द्रसे) तो ज्वर बहुत मामूली ही आप बताते हैं? चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है—यही तो आपकी राय है?

नरेन्द्र—मेरे मतामतसे क्या आता जाता है रासविहारी बाबू? मेरे ऊपर तो आप भरोसा नहीं करते। बल्कि इससे तो यही ठीक होगा कि किसी अच्छे पास-शुदा विचक्षण डाक्टरको दिखाकर उसकी राय ले लीजिए।

विलास—(चिल्लाकर) तुम किससे बात कर रहे हो, इसका खयाल रखकर बात करो—यह मैं कहे देता हूँ। यह घर न होकर कोई और जगह होती तो तुम्हारा यह कटाक्ष करना—

विजया—(नरेन्द्रकी ओर घूमकर व्यथित स्वरमें) मैं जब तक जियूँगी नरेन्द्र बाबू, आपके निकट कृतज्ञ रहूँगी। किन्तु ये लोग जब अन्य डाक्टरसे मेरी चिकित्सा कराना चाहते हैं तब आप व्यर्थ ही अपमान न सहिए। (फिर मुँह फेरकर लेटती है।)

रास०—(व्यस्त होकर) वाह ! जिन्हें तुमने बुला भेजा है, उनका अपमान कौन कर सकता है बेटी ? (क्षणभर बाद) यह बात भी सच है विलास ! इस असंयत व्यवहारके लिए तुमको पश्चात्ताप होना चाहिए। मैं मानता हूँ, समस्त ही मानता हूँ कि बेटी विजयाके रोगके गुरुत्वकी कल्पना करके तुम्हारी मानसिक चंचलता सौगुनी बढ़ गई है, तो भी—अपनेको तुम्हें स्थिर और शान्त बनाना ही होगा। सारी भलाई-बुराई, सारी जिम्मेदारी तो केवल तुम्हारे ही सिरपर है भैया ! मंगलमय भगवानकी इच्छासे जो भारी बोझ एक दिन तुमको ही अकेले वहन करना होगा—यह तो केवल उसीकी परीक्षाकी सूचना है। (नरेन चुपचाप लाठी और छोटा बैग उठा लेता है)--नरेन बाबू, आपसे मुझे कुछ जरूरी बातें करनी हैं, चलिए।

[रासविहारी नरेन्द्रको लेकर जैसे ही रंगमंचके सामनेकी ओर आते हैं वैसे ही बीचमें पर्दा गिरकर रोगीके कक्षको बिल्कुल ढक देता है। दोनों आमने-सामने कुर्सियोंपर बैठ जाते हैं।]

रास०—चार आदमियोंके सामने तुमको बाबू कहूँ या कुछ भी कहूँ नरेन, लेकिन भैया, मैं यह भूल नहीं सकता कि तुम हमारे उसी जगदीशके बेटे हो ! नहीं तो तुम्हारे मुखके ऊपर यह कहकर कि मैं तुमपर असन्तुष्ट हुआ था, तुमको क्लेश नहीं देता।

नरेन्द्र—जो सच था वही आपने कहा--इसमें दुःख करने या क्लेश पानेकी कोई बात नहीं है।

रास०—ना, ना, यह बात न कहो नरेन। कठोर बात मनमें खटकती ही है। जो सुनता है, उसे तो खटकती ही है, किन्तु जो कहता है, उसे भी कम क्लेश नहीं होता भैया !—जगदीश्वर !—लेकिन तुम भैया, विलासके मनकी अवस्था समझकर अपने मनमें किसी तरहका क्षोभ न रख सकोगे।—और मेरा तुमसे एक अनुरोध भी है। इन दोनोंका ब्याह इसी

आगामी वैशाखमें होनेवाला है। अगर कलकत्तेमें ही रहो भैया, तो इस शुभकर्ममें तुमको अवश्य सम्मिलित होना होगा। ना कहनेसे काम नहीं चलेगा।

नरेन्द्र—अच्छा। लेकिन—

रास०—ना। लेकिन-वेकिन कुछ नहीं भैया, मैं वह नहीं सुनूँगा। अच्छा हाँ, अभी क्या कलकत्तेमें ही रहना होगा? कुछ सुविधा-उविधा—

नरेन्द्र—जी हाँ। एक विलायती दवाकी दूकानमें फिलहाल एक मामूली-सा काम मिल गया है।

रास०—अच्छा अच्छा, ठीक है। दवाकी दूकानमें बड़ा फायदा है। अगर टिके रहोगे तो खासी रकम बना लोगे नरेन।

नरेन्द्र—जी।

रास०—हाँ तो तनख्वाह कितनी देते हैं?

नरेन्द्र—बादको कुछ अधिक दे सकते हैं, अभी तो सिर्फ चार सौ रुपये देते हैं।

रास०—(आँखें कपारपर चढ़ाकर आश्चर्यसे) चार सौ? वाह! वाह! खासी नौकरी है! सुनकर बड़ी खुशी हुई।

नरेन्द्र—उस परेश नामके छोकरेकी तबियत अब कैसी है—आप कुछ बता सकते हैं?

रास०—अभी कुछ देर पहले उन मा-बेटोंको उनके गाँव भेज दिया गया है।

नरेन्द्र—गाँव क्या यहाँसे दूर है?

रास०—यह तो मैं नहीं जानता भैया।

नरेन्द्र—(क्षणभर स्तब्ध रहकर) तो फिर कोई उपाय नहीं! खैर, जाने दीजिए। आप मेरी ओरसे एक बात विलास बाबूसे कह दीजिएगा। कहिएगा—प्रबल ज्वरमें मनुष्यका आवेग अत्यन्त साधारण कारणसे ही उच्छ्वसित हो सकता है। विजयाके सम्बन्धमें डाक्टरकी इस बातपर वह अविश्वास न करें।

रास०—अविश्वास क्या करेगा नरेन? यह बात क्या हम नहीं जानते? बाप होनेके कारण यह बात मेरे मुँहसे नहीं निकलती; मगर तुम अपने ही आदमी हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ—दोनों जनोंके ऐसे गहरे प्रेमके चिह्न

बीच बीचमें मुझे देख पड़ते हैं, जिन्हें प्रकट करनेकी भाषा ही मेरे पास नहीं है। जान पड़ता है, भगवान्ने जैसे संकल्प करके ही दोनोंको एक दूसरेके लिए बनाकर इस पृथ्वीपर भेजा है। उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ, और सोचता हूँ, सार्थक है इनका मिलन, सार्थक है इनका जीवन !

नरेन्द्र—इसी वैशाखमें शायद इनका ब्याह होगा ?

रास०—हाँ नरेन। देखो, उस दिन तुम्हें आना होगा—उपस्थित रहकर नवदम्पतिको आशीर्वाद देना होगा। जल्दी करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी; किन्तु सभी बार-बार कहते हैं कि जिनकी आत्मा भीतर ही भीतर इस तरह मिलकर एक हो गई है, उन्हें बाहरसे अलग रखना अपराध है। मैंने भी कहा—अच्छा, यही हो। तुम सबकी इच्छा ही मेरे भगवान्की इच्छा है। इसी वैशाखमें एक होकर—मिलकर ये दोनों संसार-सागरमें जीवनकी नौका तैरा दें।—जगदीश्वर ! मेरे जीवनके दिन तो अब पूरे हो आये हैं, अब तुम्हीं इन्हें देखना—तुम्हारे चरणोंमें ही इन्हें समर्पण करता हूँ। (हाथ जोड़कर माथेसे लगाना और सिर झुकाकर प्रणाम करना) मगर हाँ, अब तुम्हें रात हुई जा रही है भैया। आज ही क्या कलकत्ते लौटना बहुत जरूरी है ? न जाओ तो क्या कुछ हर्ज है ?

नरेन्द्र—ना, मुझे जाना ही होगा। साढ़े आठकी ही गाड़ीसे जाऊँगा।

रास०—मैं ठहरनेके लिए जिद भी नहीं कर सकता नरेन। नई नौकरी है—नागा करना ठीक नहीं। मालिक नाराज हो सकते हैं। आजका दिन तो तुम्हारा बेकार ही बर्बाद हुआ। लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूँ कि किस लिए आज तुम आये थे भैया ?

नरेन्द्र—दिन तो सत्य ही बेकार गया; किन्तु सवेरे यह आशा करके आया था कि शायद रुपए देकर वह माइक्रोस्कोप अपना लौटा ले जा सकूँ।

रास० —रुपए देकर ? अच्छा तो है, अच्छा तो है—फिर ले क्यों नहीं गये ?

नरेन्द्र - विजयाने नहीं दिया। बोलीं—उसकी कीमत चार सौ रुपए है—इससे एक पैसा भी कम न होगी।

रास०—यह कैसी बात है नरेन ? दो सौ रुपयेके बदले चार सौ रुपए ! खासकर जब तुम्हें उसकी इतनी जरूरत है और उनके किसी कामका नहीं है !

नरेन्द्र—मैंने सोचा है, उन्हें चार सौ रुपए ही देकर ले जाऊँगा।

रास०—ना, यह किसी तरह नहीं हो सकेगा। इतना बड़ा अधर्म मैं सह न सकूँगा। वह मेरी भावी पुत्र-वधू है—यह अन्याय तो मुझ तक पहुँचेगा। (क्षणभर चुपचाप अधोमुख रहकर) एक बात मैंने बारबार सोचकर देखी है। तुम्हारे साथ उसकी बातचीतमें, बाहरके आचरण या व्यवहारमें मुझे दोष नहीं देख पड़ता; किन्तु भीतर ही भीतर विजया मनमें तुम्हारे ऊपर न जाने क्यों इतनी खफा है! यह बात केवल तुम्हारे इस मकानके मामलेमें ही मैंने नहीं देख पाई—इस माइक्रोस्कोपके मामलेमें और भी अधिक स्पष्ट देख रहा हूँ। उसे लेनेमें मुझे केवल इसीलिए आपत्ति नहीं थी कि वह विजयाके किसी मतलबका नहीं है, बल्कि इसलिए भी उसे खरीदनेके खिलाफ था कि वह मशीन तुम्हारे लिए बहुत जरूरी है, तुम्हारे बहुत कामकी है। मगर जब यह मालूम हुआ कि तुम्हें रुपयोंकी बड़ी जरूरत है, जब मेरे कानोंमें यह भनक पड़ी कि उसे खरीदनेकी जबान दे दी गई है, तब मैंने निश्चय कर लिया। सोचा, माइक्रोस्कोपके दाम चाहे जो हों, रुपए तुमको दिये जायँगे—जो कहा गया है वह पूरा किया जायगा। मैंने मन ही मन कहा—विजया चाहे जब, चाहे जितने दिनोंमें मुझे रुपए दे, लेकिन मैं तुमको रुपए देनेमें देर न कर सकूँगा। इसीसे सवेरे ही तुमको मैंने दो सौ रुपए भेज दिये। यह मेरा कर्त्तव्य था। सत्यकी रक्षा मुझे करनी ही होगी।

नरेन्द्र—जान पड़ता है, साधारण दो सौ रुपए देनेकी भी उनकी इच्छा नहीं थी? उन्हें विश्वास था कि मैं ठगे लिए जा रहा हूँ?

रास०—(दाँतोंसे जीभ काटकर) ना ना ना। लेकिन अब इसके विचारकी जरूरत नहीं है नरेन। और ऐसा भी हो, तो यह कैसा असंगत प्रस्ताव है! यह कैसा अन्याय है! दो सौके बदले चार सौ! ना भैया, यह मैं उन्हें किसी तरह नहीं करने दूँगा। तुम दो सौ रुपए देकर ही अपनी चीज ले जाना।

नरेन्द्र—नहीं रासबिहारी बाबू, मेरी ओरसे आप उनसे अनुरोध न कीजिएगा। वह आराम हो जायँ, तब उनसे कह दीजिएगा कि मैं उन्हें चार सौ रुपए ही ला दूँगा। और विलास बाबूसे कहिएगा कि वह मुझे क्षमा करें—यह सब मुझे मालूम नहीं था। लेकिन अब नहीं—मेरी गाड़ीका समय हो गया; मैं चलता हूँ। (प्रस्थान)

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

समय—विजयाके बैठनेका कमरा

[विजया स्वस्थ हो गई है, लेकिन शरीर बहुत दुर्बल है]

(कालीपदका प्रवेश)

कालीपद—(आँसुओंसे विकृत स्वरमें) बिटिया रानी, इतने दिन तुम्हारी तबियत खराब रहनेके कारण कुछ कह नहीं सका। लेकिन अब कहना पड़ रहा है। छोटे बाबूने मुझे जवाब दे दिया है।

विजया—क्यों ?

कालीपद—मेरे मालिक स्वर्ग चले गये, उन्होंने कभी गाली नहीं दी; लेकिन छोटे बाबू मुझे देख नहीं सकते—दिनरात गालियाँ देते हैं। मैंने कोई कसूर नहीं किया, तब भी—(आँसू पोंछकर) उस दिन क्यों मैंने उन्हें खबर नहीं दी, क्यों नरेन बाबूको तुम्हारे कमरेमें मैं बुला लाया, इसीसे उन्होंने मुझे जवाब दे दिया है।

विजया—(कठिन स्वरमें) वह कहाँ हैं ?

कालीपद—कचहरीके दफ्तरमें बैठे कुछ कागजपत्र देख रहे हैं।

विजया—हूँ ! अच्छा, कोई जरूरत नहीं। तू जाकर काम कर।

(कालीपदका प्रस्थान।)

[दयाल बाबू प्रवेश करते हैं।]

दयाल—तुम्हारे पास ही आ रहा था बेटी !

विजया—आइए दयाल बाबू। आपकी स्त्री तो अब अच्छी हैं न ?

दयाल—आज तो ठीक हैं। नरेन बाबूको मैंने चिट्ठी लिखी थी। वह कल तीसरे पहर आकर दवा दे गये हैं। कैसी अद्भुत चिकित्सा है बेटी—चौबीस घंटेके भीतर ही जैसे बारह आने रोग दूर हो गया है !

विजया—दूर क्यों न होगा ? आप सबका क्या उनपर साधारण विश्वास है ?

दयाल—तुम्हारा यह कहना सच है ! किन्तु विश्वास तो यों ही नहीं हो जाता बेटी ! हमने परीक्षा करके देखा है न, जान पड़ता है, घरमें उनके पैर रखते ही रोगी चंगा हो जायगा।

विजया—ऐसा ही होगा !

दयाल—एक बात कहूँगा बेटी, लेकिन तुम नाराज न होने पाओगी !—यह सच है कि उनकी उम्र अधिक नहीं है; मगर जिन सब नामी और विज्ञ डाक्टरोंने तुम्हारी मिथ्या चिकित्सा करके समय और रुपए नष्ट किये, उनकी अपेक्षा वह कहीं अधिक विज्ञ हैं, यह मैं कसम खाकर कह सकता हूँ। और एक बात है बेटी, नरेन बाबू केवल मेरी पत्नीकी ही चिकित्सा नहीं कर गये, और भी एक आदमीकी व्यवस्था कर गये हैं। (टेबिलके ऊपर कागजका एक टुकड़ा रखकर) मगर देखो, मैं तुम्हें लापर्वाही नहीं करने दूँगा; औषधकी एक बार परीक्षा करके देखना ही होगा तुमको, यह मैं कहे देता हूँ।

विजया—लेकिन यह तो अँधेरेमें ढेला फेकना है दयाल बाबू—रोगीको देखे विना प्रेस्क्रिप्शन (Prescription = नुस्खा) लिखना !

दयाल—नहीं, ऐसा नहीं है ! कल जब तुम अपने बागकी रेलिङ्ग (कटहरा) पकड़े खड़ी थीं तब ठीक तुम्हारे सामनेकी राहसे ही वह पैदल गये हैं। तुम्हें अच्छी तरह ही वह देख गये हैं। जान पड़ता है, तुम अन्यमनस्क थीं, इसीसे—

विजया—वह क्या साहबी पोशाकमें थे ?

दयाल—यही बात थी। दूरसे देखने पर यही भ्रम होता था कि कोई साहब है—पहचानना ही कठिन था कि कोई बंगाली है।

विजया—(हँसकर) यह आपकी अत्युक्ति है दयाल बाबू—स्नेहका अतिरेक है।

दयाल—यह सच है कि मैं उन्हें स्नेह करता हूँ, खूब ही स्नेह करता हूँ।

लेकिन मैं यह बात बिल्कुल ही बढ़ाकर नहीं कह रहा हूँ बेटी ! इतना बड़ा विद्वान् आदमी है; लेकिन घमण्ड छू तक नहीं गया। बातें जैसे मीठी हैं वैसे ही बच्चोंकी-सी सरल हैं। किसी तरह जाने देनेको जी नहीं चाहता—यही इच्छा होती है कि और कुछ देर रोक लें।

विजया—रोक क्यों नहीं लेते ?

दयाल—(हँसकर) यह कहीं हो सकता है बेटी, उन्हें कितने काम हैं; कितना परिश्रम उन्हें करना पड़ता है। तो भी गरीब समझकर हमपर कितनी दया करते हैं ! मेरी स्त्री जबसे बीमार है, तबसे प्रायः नित्य ही वह उसे देखने आते हैं।

[विलासबिहारीका प्रवेश।]

विलास०—(विजयासे) कैसी तबियत है आज ?

विजया—अच्छी है।

विलास०—अच्छी तो वैसी नहीं देख पड़ती है। (दयालसे) आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?

दयाल—बिटियाको जरा देखने आया था।

[विलासकी नजर टेबिलपर रखे नुस्खेपर पड़ जाती है और वह उसे उठा लेता है।]

विलास—नुस्खा दिखाई दे रहा है। किसका है ? (गौरसे देखकर) नरेनका नाम दिखता है ! खुद डाक्टर साहबका !—लेकिन यह यहाँ आया किस तरह ? (दयाल बाबू और विजया दोनों कुछ नहीं बोलते) सुनूँ तो, कैसे आया ? डाकसे आया है क्या ? हूँ ! डाक्टर तो बस नरेन्द्र डाक्टर है ! जान पड़ता है, इसीसे और डाक्टरोंकी दवा नहीं खाई जाती; शीशीकी दवा शीशीमें ही पड़ी सड़ा करती है, उसके बाद फेंक दी जाती है ! यह तो खैर, किन्तु इन कलियुगके धन्वन्तरिने यह कागज भेजा किस तरह ? किसकी मार्फत ? बात मुझे मालूम होनी चाहिए। (दयालसे) अभी तो आप खूब लेक्चर दे रहे थे—सीढ़ियोंपरसे ही सुन पड़ रहा था—मैं पूछता हूँ, आप कुछ जानते हैं ? एकदम भीगी बिल्ली बन गये ! बताइए, कुछ जानते हैं ?

दयाल—जी हाँ।

विलास—ओः—यह बात है ! उसे कहाँ पाया ?

दयाल—जी, वह मेरी स्त्रीको देखने आते हैं कि नहीं—और बहुत अच्छा इलाज करते हैं—इसीसे मैंने उनसे कहा था कि बेटी विजयाके लिए अगर एक—

विलास—इसी लिए शायद यह व्यवस्थापत्र है ? आप इनके मुरब्बी बन बैठे हैं ? हूँ । (घड़ीभर बाद) आपसे गये सालका हिसाब पूरा करनेके लिए कहा गया था—वह पूरा हो गया ?

दयाल—जी, दो दिनके भीतर ही पूरा कर डालूँगा ।

विलास—मैं पूछता हूँ, हुआ क्यों नहीं ?

दयाल—घरमें भारी विपत्ति बीत रही थी—अपने हाथसे खाना पकाना पड़ता था—काम करने आ ही नहीं सका ।

विलास—(विद्रूप करके) आ ही नहीं सका !—तो फिर और क्या—मुझे राजा बना दिया—निहाल कर दिया ! मैंने तभी बापूसे कहा था कि इन सब बूढ़ों-हबूड़ोंसे मेरा काम नहीं चलेगा—इन्हें मैं नहीं चाहता ।

विजया—(धीमे, पर कठिन स्वरमें) आप जानते हैं, दयालबाबूको यहाँ किसने बुलाया है ? आपके बापूने नहीं—मैंने बुलाया है !

विलास—चाहे जिसने बुलाया हो, यह जाननेकी मुझे जरूरत नहीं । मैं काम चाहता हूँ—मेरा संबंध कामके साथ है ।

विजया—जिनके घरमें विपत्ति है, वह कैसे काम करने आ सकते हैं ?

विलास—इस तरह सभी विपत्तिकी दोहाई देते हैं । किन्तु उसे सुनूँ तो मेरा काम नहीं चल सकता । मैंने जरूरी काम कर डालनेका हुक्म दिया था, वह क्यों नहीं हुआ ? —मैं इसीकी कैफियत चाहता हूँ । विपत्तिकी खबर नहीं जानना चाहता ।

विजया—दयाल बाबू, अब आप जाइए । नमस्कार ।

[दयालका प्रस्थान]

विजया—दयाल बाबू गये, अब कहिए, आप क्या कह रहे थे ?

विलास—कह रहा था कि मैंने जरूरी काम कर डालनेका हुक्म दिया था, हुआ क्यों नहीं, इसीकी कैफियत चाहता हूँ । विपत्तिकी खबर नहीं जानना चाहता ।

विजया—देखिए विलास बाबू, दुनियाके सभी लोग मिथ्यावादी नहीं हैं। सभी मिथ्या विपत्तिकी दोहाई नहीं देते—कमसे कम मन्दिरका आचार्य नहीं देता। खैर, इस बहसको छोड़िए। मैं आपसे पूछती हूँ कि जब आप यह जानते हैं कि दरकारी काम होना ही चाहिए, तब खुद आपने ही क्यों नहीं उसे कर डाला? आपने क्यों चार दिन गैरहाजिरी की? आपपर क्या विपत्ति-आपत्ति आई थी, जरा सुनूँ?

विलास—(हतबुद्धि होकर) मैं खुद खाता लिख रखूँ? मैंने क्यों गैरहाजिरी की?

विजया—हाँ, मैं यही जानना चाहती हूँ। महीने-महीने दो सो रुपए तनख्वाह आप लेते हैं। वह रुपया तो यों ही आपको नहीं देती—काम करनेके लिए ही देती हूँ।

विलास—मैं नौकर हूँ? मैं तुम्हारा अमला हूँ?

विजया—काम करनेके लिए जिसे वेतन दिया जाता हो, उसे इसके सिवा और क्या कहते हैं? आपके असंख्य अत्याचार मैं चुपचाप सहती आई हूँ; लेकिन जितना ही मैं सहती गई उतना ही अन्याय उपद्रव बढ़ता गया। जाइए, नीचे जाइए। मालिक-नौकरके सम्बन्धके सिवा आजसे आपके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। जिस नियमसे मेरे और कर्मचारी काम करते हैं, ठीक उसी नियमसे काम कर सकें तो कीजिए; नहीं तो मैं आपको जवाब देती हूँ। मेरी कचहरीमें घुसनेकी चेष्टा न कीजिएगा।

विलास—(उछलकर दाहने हाथकी तर्जनी हिलाते-हिलाते) तुम्हारा इतना दुःसाहस!

विजया—दुःसाहस मेरा नहीं, आपका है! मेरे ही इस्टेटमें नौकरी करेंगे, और मेरे ही ऊपर जुल्म करेंगे! मुझे 'तुम' कहनेका अधिकार आपको किसने दिया? मेरे नौकरको मेरे ही घरमें जवाब देनेकी—मेरे अतिथिको मेरी ही आँखोंके सामने अपमानित करनेकी हिम्मत आपमें कहाँसे आई?

विलास—(क्रोधसे एकदम पागल-सा होकर) अतिथिके बापका पुण्य था, जो उस दिन उसका एक हाथ मैंने नहीं तोड़ दिया! पाजी, बदमाश, लोफर कहींका! अगर फिर कभी उसको मैंने यहाँ देख पाया तो—

[चीत्कारके शब्दसे डरकर कन्हाईसिंह वगैरह नौकर दरवाजेपर आकर भीतर झाँकने लगे। विजयाने लज्जित होकर कण्ठस्वरको संयत और स्वाभाविक करके कहा —]

विजया — आप नहीं जानते, लेकिन मैं जानती हूँ कि यह आपका ही कितना बड़ा सौभाग्य था कि आपने उनके ऊपर हाथ उठानेका अति साहस नहीं किया। वह उच्च शिक्षित भद्रपुरुष हैं। उस दिन उनकी देहमें हाथ लगानेपर भी वह शायद एक बीमार स्त्रीके घरमें झगड़ा न करके उसे बर्दाश्त करके ही चले जाते। किन्तु मेरा यह उपदेश न भूलिएगा कि आइन्दा उनकी देहपर हाथ लगानेकी इच्छा अगर आपकी हो तो पीछेसे ऐसा कीजिएगा, सामनेसे भिड़नेका दुःसाहस न करिएगा। खैर, बहुत चीखना-चिल्लाना हो गया, अब और नहीं! नीचेसे नौकर-चाकर, दरबान तक डरकर ऊपर आ गये हैं— जाइए, नीचे जाइए। (प्रस्थान)

[विलास क्रोध और विस्मयसे हतबुद्धि हो जाता है। उसकी आग उगलती हुई नजर विजयाकी ओर जमी रहती है। इसी समय व्यस्त भावसे रासविहारी प्रवेश करते हैं।]

रास० — मामला क्या है विलास? यह इतना चीखना-चिल्लाना काहेका है? विजया कहाँ है?

विलास — जानते हो बापू, विजयाने मुझसे कहा कि मैं उसका महीना पानेवाला चाकर हूँ। और नौकरोंकी तरह अगर मालिकका मन रखकर न चलूँगा, तो वह मुझे डिसमिस् कर देगी!

रास० — क्यों? क्यों? एकाएक यह क्यों कहा? तुमने उससे क्या कहा था?

विलास — कहता और क्या? कालीपदको जवाब दे दिया था, यह हुआ पहला अपराध।

रास० — कहते क्या हो! तो इतनी जल्दी उसे जवाब क्यों दिया? अभी उस दिन तुम नरेनका खामखा अपमान कर बैठे — जानते तो हो, उसके प्रति विजयाका —

विलास० — यही तो असल रोग है। उसी जुआचोर लोफरके कारण ही तो इतना हुआ! जानते हो बापू, विजया कहती है कि नौकर होकर मैं उसके अतिथि — उसी नरेन — का अपमान किस साहससे करता हूँ —

रास०—ऐं ! और क्या कहा उसने ? नाः, मैं जितना ही सँभाल सुँभूल कर ठीक करता हूँ, तुम उतना ही एक-न-एक नया बखेड़ा खड़ा कर देते हो !

विलास०—बखेड़ा काहेका ? इस पाजी कालीपदको निकाल बाहर न करूँगा तो क्या घरमें रखूँगा ? कहा नहीं, सुना नहीं, एकाएक एक असभ्य जानवरको ले आकर विजयाके बिछौनेके ऊपर बिठा दिया -- और यह बुड्ढा दयाल भी वैसा ही आ जुटा है !

रास०—अरे उनको भी कुछ कहा है क्या ? देखता हूँ, तुमने सब चौपट कर दिया !

विलास०—कहूँगा नहीं ? एक सौ दफे कहूँगा । नरेन डाक्टरको वह बहुत चाहते हैं । उसे मैंने उस दिन घरसे निकाल बाहर किया—और यह छिपकर उसकी दलाली करने आये—एक प्रेस्क्रिप्शन (नुस्खा) तक लेकर हाजिर हो गए—विजयाकी चिकित्सा होगी ! इधर स्त्रीकी बीमारीका बहाना करके बुड्ढा चार दिनका गोता लगा गया, एक बार कचहरीमें आया तक नहीं—Worthless, old fool (असार, बेवकूफ बुड्ढा)

[रासबिहारी क्रोध और क्षोभसे स्तब्ध भावसे विलासका मुँह ताकते रहते हैं।]

विलास०—विजयाने तो आज तुम्हारा तक अपमान कर डाला !

रास०—उससे तुम्हारा क्या ?

विलास०—मेरा क्या ? मेरे मुँहके ऊपर वह कहे कि दयाल बाबूको रासबिहारी बाबू नहीं लाये, मैं लाई हूँ ! और यह भी कि दयाल बाबू कुछ काम करें या न करें, उन्हें कोई कुछ नहीं कह सकेगा ! वह मुझे अमला कहती है ! कहती है, जिस नियमसे मेरे और कर्मचारी काम करते हैं, उसी नियमसे काम करना हो तो करो, नहीं चले जाओ !

रास०—उसने तो तुमसे केवल चले जानेको कहा, मेरा तो जी चाहता है कि तुमको गर्दनिया देकर बाहर निकाल दूँ !

विलास—ऐं !

रास०—हमें जो लोग 'छोटी जाति' कहते हैं सो कुछ झूठ नहीं है ! हजार हो, आखिर तो तू किसानका लड़का है न ! ब्राह्मण-कायस्थका बेटा होता तो भलमंसी भी सीखता, अपना भला-बुरा भी समझता, हिताहितका भी खयाल होता, कब किससे क्या कहना चाहिए, इसकी तमीज भी आती। अब जाओ बच्चा, हल-बैल लेकर

खेतोंमें अपना पुश्तैनी काम करते फिरो। उठते-बैठते तुझे तोतेकी तरह पढ़ाता रहा कि कुशल-क्षेमसे शुभकर्म एक बार हो जाय, उसके बाद जो इच्छा हो सो करना। मगर तुझसे सब्र नहीं हुआ। तू उससे भिड़ने गया! वह ठहरी राय-वंशकी लड़की—सुप्रसिद्ध हरि रायकी पोती, जिनसे सब थर थर काँपते थे! तू गया था हाथ बढ़ाकर उसकी नाकमें नकेल डालने—बेवकूफ कहींका! मान-मुरव्वत सब गई, इतनी बड़ी जमींदारीकी आशा और भरोसा गया, दो सौ रुपए हर महीने आते थे, सो गये! अब जाओ बच्चा, किसानके लड़के हो सो हलकी मूठ पकड़ो! आया है मेरे पास लाल आँखें करके उसके नाम नालिश करने! दूर हो—अब मैं तेरा मुँह नहीं देखूँगा!

[इतना कहकर रासबिहारी तेजीसे पैर बढ़ाते हुए वहाँसे चले जाते हैं! पीछे पीछे विलास भी विह्वलकी तरह धीरे-धीरे चला जाता है। फिर धीरे-धीरे विजया प्रवेश करती है और टेबिलपर सिर झुकाकर बैठती है। इतनेमें दयाल प्रवेश करते हैं।]

दयाल—यह क्या कर बैठीं बेटी! और वह भी मुझ जैसे एक बदनसीबके लिए! मैं तो लज्जा, संकोच और पश्चात्तापसे मरा जाता हूँ!

विजया—(सिर उठाकर, आँखें पोंछकर) आप क्या घर नहीं गये?

दयाल—मुझसे जाया नहीं गया बेटी। पैर थर-थर करके काँपने लगे; बरामदेके उस किनारे एक स्टूलके ऊपर बैठ गया। बहुत-सी बातें कानोंमें पड़ गईं।

विजया—न पड़तीं तो ठीक होता। लेकिन मैंने कुछ अन्याय नहीं किया। आपका अपमान करनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं था।

दयाल—था क्यों नहीं बेटी! जो काम मुझे करना चाहिए था, वह मैंने नहीं किया; फिर एक चिट्ठी लिखकर उनसे छुट्टी तक नहीं ली—यह सब क्या मेरा अपराध नहीं है? इससे क्या मालिकको क्रोध नहीं आता?

विजया—कौन मालिक है, विलास बाबू? अपनेको मालकिन कहते मुझे लज्जा आती है दयाल बाबू। लेकिन अगर यह दावा किसीका है तो मेरा ही है। और किसीका नहीं।

दयाल—यह बात न कहनी चाहिए बेटी,—क्रोधमें भी नहीं। हमारी मालिक जैसे तुम हो, वैसे ही विलास बाबू हैं। यही तो हम सब समझते हैं।

विजया—ऐसा समझना गलत है। मेरे सिवा इस घरमें और कोई मालिक नहीं है।

दयाल—शान्त होओ बेटी, शान्त होओ। विलास बाबूमें इतना ही दोष है कि वह कुछ क्रोधी हैं और थोड़ेमें ही चंचल हो उठते हैं। लेकिन मनुष्यमें सभी गुण तो नहीं होते, उसमें कोई-न-कोई कमी तो रहती ही है। यहींपर नलिनीसे मेरी राय नहीं मिलती। जिस दिन तुम असुस्थ होकर शय्यागत थीं, उस दिन नरेनका अपमान करनेकी बात सुनकर नलिनी क्रोधसे आगबबूला हो उठी। बोली—इसका असल कारण विलास बाबूका विद्वेष है। खाली ईर्ष्या और विद्वेष।

विजया—विद्वेष काहेके लिए दयाल बाबू?

दयाल—क्या जानें कैसे, नलिनीके मनमें यह धारणा हो गई है कि तुम मन-ही-मन नरेनपर—करुणा—करती हो। यही विलास बाबू सह नहीं सकते।

विजया—करुणा तो मैंने उनपर नहीं की। मेरे किसी भी कामसे तो उनके प्रति करुणा नहीं प्रकट हुई दयाल बाबू!

दयाल—मैं भी तो यही कहता हूँ। कहता हूँ, वैसी करुणा तो विजया सभीपर करती हैं। मुझीपर क्या वह कम दया करती हैं!

विजया—जी चाहे तो आप लोग दयाकी बात कह भी सकते हैं; लेकिन नरेन बाबू नहीं कह सकते। बल्कि उन्होंने तो बार-बार जो कुछ मुझसे पाया है, वह मेरी निष्ठुरताका ही परिचय देता है। आप ही बताइए, यह सच है कि नहीं?

दयाल—(लज्जाके साथ) ना ना, सच नहीं है—सच नहीं है; लेकिन हाँ, नरेन स्वयं कुछ-कुछ ऐसा ही सोचते हैं। उस दिन तुमने कालीपदके हाथ मेरे घर उनका माइक्रोस्कोप भेज दिया, तो नरेनने उससे पूछा—उन्होंने कितने रुपये देनेके लिए कहा है? कालीपदने कहा—रुपये-पैसेकी बात तो उन्होंने कुछ कही नहीं, यों ही दिया है। इसपर नरेनने कहा—यों ही क्या रे? कालीपदने कहा—हाँ, यों ही ले जाइए। रुपए जान पड़ता है, न देने होंगे। सचमुच इसपर तो विश्वास नहीं किया जा सकता। निश्चय कालीपदने गलत सुना या समझा है। इससे ही नरेन बिगड़ उठे।

बोले—उनसे जाकर कह दे कि मुझे इसे दान कर देनेकी जरूरत नहीं है, ठट्ठा करनेकी भी जरूरत नहीं है। जा, लौटा ले जा।

विजया—यह मैं कालिपदके मुँहसे सुन चुकी हूँ।

दयाल—लेकिन नलिनीने उन्हें रोका था। उसकी धारणा यह थी कि नरेन्द्रका इसके विना हर्ज हो रहा है—यह सोचकर ही विजयाने इसे भेज दिया है—उपकार करनेके लिए भी नहीं और व्यंग-विद्रूप करनेके लिए भी नहीं। आपने शायद सोचा हो कि हाथोंहाथ या तत्काल रुपए न लेकर कभी बादको किसी दिन रुपए ले लिये जायँगे। मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। बताओ तो बेटी, सच है कि नहीं?

विजया—जानती नहीं दयाल बाबू। बीमारीकी हालतमें माइक्रोस्कोप भेजा था, ठीक ठीक याद नहीं आता कि उस समय क्या सोचा था।

दयाल—मगर नलिनी जोर देकर कहती है कि यही बात है। वह बोली—नरेन्द्र जैसे भले, भोलानाथ, अपनेको भूले हुए, निःस्वार्थ मनुष्यका कोई कभी अपमान नहीं कर सकता—एक विलास बाबूको छोड़कर। किन्तु नरेन खुद किसी तरह इस बातपर विश्वास नहीं कर सके। बोले—जो आदमी मेरी परम दुर्गतिके दिन यह मशीन दो सौ रुपएमें खरीदकर, दो दिन बाद ही अपने मुँहसे इसके चार सौ रुपए माँगता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। वे बड़े आदमी हैं, उनके बहुत ऐश्वर्य है, इसीसे हम जैसे निःस्व लोगोंकी हँसी उड़ानेमें ही उन्हें आनन्द मिलता है। खैर, जाने दो ये सब बातें बेटी। मैं तुम दोनोंको चाहता हूँ, प्रेम करता हूँ इससे क्लेश होता है। (जरा चुप रहकर) लेकिन नरेनने तुम्हारे विलासको सच्चे हृदयसे क्षमा कर दिया है। वह ऐसा भुलक्कड़, अन्यमनस्क और निःसंग आदमी है कि सभीने जब सुन लिया है कि तुम दोनोंका ब्याह पक्का हो गया है, तब भी उसने नहीं सुना? तुम्हारे कमरेसे बाहर लाकर जब रासबिहारी बाबूने उसे यह खबर सुनाई तब जैसे वह चौंक पड़ा और विलास बाबूके क्रोधका कारण समझ पानेपर उसने उन्हें तत्काल ही क्षमा कर दिया। केवल इतना ही वह अब तक नहीं समझ पा रहा है कि उस जैसे गरीब, गृहहीन, बदनसीबको विलास बाबूने सन्देहकी दृष्टिसे कैसे देखा? इतना बड़ा भ्रम उनको कैसे हुआ? मैं भी ठीक यही सोचता हूँ। केवल नलिनी ही गर्दन हिलाती है—वह सब बातें सुन चुकी है।

विजया—सुन चुकी हैं ? सुनकर क्या कहती हैं नलिनी ?

दयाल—कहती कुछ नहीं, केवल होठ दबाकर हँसती है—मुसकरा देती है।

विजया—वह क्या चली गई ?

दयाल—नहीं। आज जायगी। उसने कहा था कि जाते समय एक बार तुमसे मिलकर जायगी। अब शायद तीन बजनेवाले हैं, आती ही होगी, या फिर शायद नरेनके लिए ठहरी होगी।

विजया—आज कलकत्तेसे वह आनेवाले हैं ?

दयाल—हाँ। मेरी स्त्रीको देखने आवेंगे। लेकिन नरेन अगर कलकत्तेसे कहीं चला गया बेटी, तो सबसे बढ़कर मुझे ही कठिनाई होगी।

विजया—वह कहीं जानेवाले हैं क्या ?

दयाल—हाँ। अभी परसों ही कहता था कि अब यहाँ रहनेकी उसकी इच्छा नहीं है। दक्षिण-अफ्रीका (South Africa) में कहींपर काम मिलनेकी सम्भावना है। वहाँसे खबर पाते ही वह रवाना हो जायगा।

विजया—इतनी दूर ?

दयाल—हम लोगोंने भी यही कहा। लेकिन वह कहता है कि मेरे लिए क्या दूर और क्या नेरे ? क्या देश और क्या विदेश ? सभी बराबर है। सुनकर सोचा, सच ही तो है। यहाँ ऐसा क्या आकर्षण है जो उसे अपनी ओर आकृष्ट किये रहे ? लेकिन यह सोचनेसे भी जैसे आँखोंमें आँसू भर आते हैं। अच्छा अब जाता हूँ बेटी, थोड़ा-सा काम बाकी है, उसे जाकर पूरा कर डालूँ।

विजया लेकिन घर जाते समय और एक बार मुझसे मिल लीजिएगा—यों ही न चले जाइएगा।

[कालीपदका प्रवेश।]

कालीपद—(दयालसे) डाक्टर साहब आपसे मिलना चाहते हैं।

दयाल—कौन डाक्टर, हमारा नरेन ? मुझसे मिलना चाहता है ? यहाँ आकर ?

कालीपद—नीचेकी बैठकमें बिठाऊँ, या चले जानेके लिए कह दूँ ?

विजया—चले जानेके लिए कह देगा ? क्यों ? जा, मेरे इसी कमरेमें उनको बुला ला।

(सिर हिलाकर कालीपदका प्रस्थान ।)

दयाल—यहाँ बुलाना क्या अच्छा होगा बेटी ?

विजया—मेरे घरके भले-बुरेके विचारका भार मेरे ही ऊपर रहे दयाल बाबू।

दयाल—ना ना, यह मैं नहीं कहता। किन्तु विलासबाबू सुन पावेंगे तो क्या—

विजया—मैं समझती हूँ कि उनके सुन पानेकी ही जरूरत है। उससे अपने यथायोग्य स्थानके सम्बन्धकी धारणा पक्की होती है।

(कालीपदका प्रवेश ।)

कालीपद—डाक्टर साहब आये नहीं, चले गये।

दयाल—चले गये ? क्यों ?

कालीपद—पूछा, मिस दास हैं ? मैंने कहा—नहीं। बोले—तो फिर कोई जरूरत नहीं, उस घरमें ही भेंट होगी। इतना ही कहकर चले गये।

दयाल—माजीने बुलाया है, यह कहा था ?

कालीपद—कहा क्यों नहीं। बोले, आज अब समय नहीं है—छः बजेकी गाड़ीसे ही लौट जाना है। फुरसत मिली और समय हुआ तो और किसी दिन आकर मिल जायँगे।

दयाल—(सलज्जभावसे) क्या जानें। ऐसी तो उसकी प्रकृति नहीं है बेटी। जान पड़ता है, सचमुच ही बड़ी जल्दी होगी जानेकी।

विजया—(कालीपदसे) अच्छा अब तू जा यहाँसे।

[जानेके लिए घूमते ही कालीपद सहसा व्यस्त हो उठा। बोला—बड़े बाबू आ रहे हैं, और संकोचके साथ अन्य द्वारसे निकल गया। धीमी चालसे रासबिहारी बाबूका प्रवेश।]

रास०—यहाँ हैं बेटी विजया। दयाल बाबू भी देख पड़ते हैं। बैठो बेटी, बैठो—बैठो।

[दयाल बाबूने सन्मानपूर्वक प्रणाम किया, विजया उठ खड़ी हुई। रासबिहारीके आसन ग्रहण करनेपर विजया भी बैठ गई।]

रास०—यह अच्छा ही हुआ जो दोनों जनोंसे एक ही साथ एक ही

ही जगह भेंट हो गई। और भी पहले आ सकता था, किन्तु विलासको एकाएक सर्दी-गर्मी जैसा कुछ हो गया। सिरपर मुँहपर पानी डालकर हवा करनेसे, जब वह कुछ सुस्थ हुआ तब कहीं आ सका। उसके मुँहसे सभी कुछ सुन पाया दयाल बाबू—(दयाल कुछ कहनेकी चेष्टा करते हैं, पर रासबिहारी हाथ हिलाकर उन्हें रोक देते हैं)—ना ना ना, उसके दोषोंको धोनेकी चेष्टा न कीजिएगा दयाल बाबू। जो आप सरीखे साधुप्रकृति भगवद्भक्त पुरुषका भी असम्मान कर सकता है उसके पक्षमें कहनेको कुछ नहीं है। आपके काममें ढिलाई देख पड़ी है—लेकिन इससे क्या ? साहब लोग विलासकी कर्त्तव्यनिष्ठा और उसके कर्ममय जीवनकी लाख बड़ाई करें, लेकिन हम साहब नहीं हैं; कर्मने ही तो हमारे सम्पूर्ण जीवनपर अधिकार नहीं कर लिया है। लेकिन उसने यह दण्ड पाया किससे ? देखी दयाल बाबू, उस करुणामयकी करुणा—उसने यह दण्ड उसीसे पाया, जो उसकी धर्मसंगिनी है, जिसका आत्मा जुदा नहीं है। जुग जुग जियो बेटी, यही तो चाहिए ! यही तो मैं तुमसे आशा करता हूँ ! (क्षणभर बाद) लेकिन यह मैं किसी तरह नहीं समझ पाता कि विलास मुझ जैसे सीधे-सादे, भोलेभाले, संसारसे विरक्त पुरुषका बेटा होकर इतना बड़ा कर्मपटु, पक्का हिसाबी और दुनियादार कैसे हो उठा ? भगवान्‌की यह कैसी लीला है कि संसारका रहस्य कुछ भी समझनेका उपाय नहीं है बेटी !

दयाल —उनका कुछ दोष नहीं है रासबिहारी बाबू, मुझसे ही भारी अन्याय हो गया है। इस तरुण अवस्थामें ही उनकी कैसी कर्त्तव्य-निष्ठा है, कैसी चित्तकी दृढ़ता है, यह कह नहीं सकता। उन्होंने जो कुछ कहा वह उचित ही था।

रास०—उचित था ? अबकी मुझे सचमुच ही दुःख होगा दयाल बाबू। आप भक्त हैं, ज्ञानी हैं, लेकिन अवस्थामें मैं बड़ा हूँ। यह मैं जानता हूँ कि संसारमें 'अति' किसी चीजकी—किसी बातकी—अच्छी नहीं होती। यह भी जानता हूँ कि विलास कर्ममय प्राण है। कामके मामलेमें वह अन्धा है, और कुछ नहीं देखता। किन्तु इसके यह माने नहीं कि मानीके मानकी भी रक्षा न करनी होगी। ना, ना, मैं बूढ़ा आदमी हूँ, वह तेज भी नहीं है, वह जोर भी नहीं है—इसे मैं 'अच्छा' नहीं कह सकूँगा। अपना लड़का है, इस लिए इस मुखसे मिथ्या बात तो निकल नहीं सकती दयाल बाबू।

दयाल—साधु ! साधु !

रास०—यह अच्छा ही हुआ बेटी। मुझे अपार आनन्द प्राप्त हुआ कि विलासको यह सर्वोत्तम शिक्षा आज तुम्हारे ही हाथसे पानेका सुयोग प्राप्त हुआ। किन्तु मेरे इस भ्रमको तो देख रहे हैं आप दयाल बाबू—आनन्दमें इतना अपनेको भूल बैठा हूँ कि अपनी बेटीको ही समझाने बैठ गया। जैसे वह मुझसे कम उसका मंगल चाहनेवाली हैं। आज इतना आनन्द तो मुझे इसी लिए है कि तुमने अपना काम अपने हाथसे किया है! उसकी सारी भलाई केवल तुम्हारे ही हाथसे हो सकती है! उसकी शक्ति, तुम्हारी बुद्धि। वह भार-वहन करके चलेगा, तुम राह दिखाओगी। जगदीश्वर! (आँखें उठाकर) ओह ! चार बजनेवाले हैं ! अभी बहुत काम बाकी है। चलता हूँ बेटी विजया! चलता हूँ दयाल बाबू! (जानेके लिए उद्यत होते हैं।)

दयाल—चलिए, मैं भी चलता हूँ।

रास०—लेकिन असल बात तो अभी कहनेको बाकी ही है। (लौटकर बैठ जाते हैं) अपने इस बूढ़े काका बाबूका एक अनुरोध तुम्हें रखना ही होगा बेटी। बोलो, रखोगी ?

विजया—बताइए, क्या ?

रास०—लज्जा, व्यथा और पछतावेसे वह भीतर-ही-भीतर जला जा रहा है। लेकिन इस बार तुमको कुछ कठिन बनना पड़ेगा। उसके क्षमा माँगते ही सब भूल जाओ, यह न हो। सजा उसे पूरी मिलनी चाहिए। कमसे कम एक दिन भी वह इस दुःखको भोगे, यही मेरा अनुरोध है।

विजया—विलास बाबू क्या अचानक असुस्थ हो पड़े थे ?

रास०—ना, सो मैं न कहूँगा—वह कुछ भी नहीं है—वह बात सुननेकी तुम्हें कोई जरूरत नहीं है !

विजया—कालीपद !

(कालीपदका प्रवेश।)

कालीपद—जी—

विजया—विलास बाबू दफ्तरमें हैं। उन्हें जरा बुला ला।

कालीपद—जो आज्ञा। (कालीपदका प्रस्थान)

रास०—(स्नेहपूर्वक झिड़कीके स्वरमें) छी बेटी ! सुनकर तुमसे रहा

नहीं गया, अभी ही बुला भेजा ? (हँसकर दयालसे) ठीक यही डर था मुझे दयालबाबू, वह दुखी हो रहा है, यह सुनते ही विजया सहन न कर सकेगी—
—इसीसे मैं कहना नहीं चाहता था—न जाने कैसे अचानक मुँहसे निकल पड़ा—लेकिन मैं रोकूँ कैसे ? मेरी बेटी करुणामयी हैं, यह तो संसारके सभी लोग जान गये हैं। चलिए दयाल बाबू—

दयाल—चलिए। (कालीपदका प्रवेश।)

कालीपद—छोटे बाबू घर चले गये, उन्हें बुलाने आदमी गया है।

रास०—आदमी गया है ? आज उसे न बुलातीं, तभी अच्छा होता बेटी। लेकिन—ओः ! इस गड़बड़में हम एक बहुत बड़े कामको भूले जा रहे हैं। दयाल बाबू, आज नये सालका पहला दिन है। हम लोगोंकी बहुत दिनोंकी कल्पना है कि हम आजके शुभ दिनमें विशेष रूपसे बेटीको आशीर्वाद देंगे। इस लिए यह अच्छा ही हुआ कि हमारे विना कहे ही आदमी विलासको बुलाने चला गया ! यह भी उसी करुणामयका निर्देश है। आइए दयाल बाबू, *और विलम्ब न करिए—साधारण आयोजन सम्पूर्ण कर लें—विलासके आते ही* हम लौट आकर विजयाको अपनी सारी कल्याण-कामना अर्पण कर जायँगे। आइए, चलिए।

[दोनोंका प्रस्थान। विजया जानेके पहले टेबिलके ऊपरकी चिट्ठियाँ और कागज-पत्र कायदेसे उठाकर रख रही थी। इसी समय कालीपदने सिर भीतर निकालकर कहा—]

कालीपद—माजी, डाक्टर साहब—(कहकर अदृश्य हो जाता है।)

[नरेन्द्रका प्रवेश।]

नरेन्द्र—(हैट और छड़ी एक तरफ रखते रखते) नमस्कार ! राहसे ही लौट आया। सोचा, आप जैसी बदमिजाज हैं, उससे, अगर न गया तो बेहद नाराज होंगी।

विजया—बेहद नाराज होकर मैं आपका क्या कर सकती हूँ ?

नरेन्द्र—क्या कर सकती हैं, यह सवाल नहीं है, असल बात यह है कि क्या नहीं कर सकतीं ! लेकिन वाह ! देखता हूँ, मेरी दवासे खूब फायदा

।

विजया—आपकी दवासे हुआ, यह आपने कैसे जाना? मुझे देखकर या किसीसे सुनकर?

नरेन्द्र—सुनकर। क्यों, आपने क्या दयाल बाबूसे नहीं सुना कि मेरी दवाको खाना तक नहीं पड़ता, केवल नुसखेको एक नजर देखकर और फाड़कर फेंक देनेसे भी आधेके लगभग काम हो जाता है। हाः हाः हाः हाः–

विजया—(हँस देती है) इसीसे शायद बाकी आधा रोग दूर करनेके लिए राहसे लौट आये हैं! लेकिन उधर नलिनी बेचारी जो आपकी राह देखती होगी?

नरेन्द्र—यह बात जरूर है। दयाल बाबूकी स्त्रीको एक बार जाकर देख आना होगा। लेकिन मेरे लिए आप विलास बाबूके साथ अच्छा झगड़ा कर बैठीं! छी छी छी छी—हाः–हाः–हाः हाः—

विजया—इतनी जल्दी आपसे किसने कह दिया?

नरेन्द्र—दयाल बाबूने। अभी अभी नीचे उनसे मुलाकात हुई थी—छी छी छी—यह आपका भारी अन्याय है!—भारी अन्याय! हाः हाः हाः—

विजया—अन्याय मेरा है, लेकिन आप इतने प्रसन्न क्यों हो उठे?

नरेन्द्र—(गंभीर होकर)—प्रसन्न हो उठा? बिल्कुल नहीं। अवश्य यह बात सम्पूर्ण रूपसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि सुनकर पहले पहल कुछ आमोद-सा मालूम पड़ा था; किन्तु उसके बाद वास्तवमें मुझे दुःख हुआ। आपकी ही तरह विलास बाबूका मिजाज भी उतना अच्छा नहीं है। जान पड़ता है, भविष्यमें आप लोगोंमें दिन-रात लाठी चलेगी।

विजया—आप यही तो चाहते हैं!

नरेन्द्र—(दाँतोंसे जीभ काटकर, लज्जित भावसे) ना ना ना ना, छी छी, यह बात न कहिए। सचमुच ही सुनकर मुझे बड़ा खेद हुआ। यह ठीक है कि उनका मिजाज अच्छा नहीं है; लेकिन आप स्वयं भी असहिष्णु होकर कुछ अपमानकी बातें कह डालें, यह भी भारी अन्याय है। आप ही सोचकर देखिए, बात अगर बाहिर जाहिर हो जाय तो भविष्यमें कैसी लज्जाका कारण होगी? खासकर मेरे लिए आप दोनोंके बीच ऐसी एक अप्रीतिकर घटना घटित होनेसे–

विजया—इसीसे आप खुशीके मारे हँसी नहीं रोक पाते हैं?

नरेन्द्र—(गंभीर मुखसे)—छी छी, आप क्यों बार-बार ऐसा समझ रही हैं ? विश्वास कीजिए, सचमुच ही बहुत दुःख हुआ है। लेकिन तब मैं आप लोगोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानता था। बुखारकी तेजीमें एक साधारण-सी बात आपके मुँहसे निकल गई थी, उसीसे इतना सब बखेड़ा उठ खड़ा हुआ ! पहले तो विलासबाबूका उग्र भाव देखकर मैं हतबुद्धि हो गया, उसके बाद बाहर ले जाकर रासबिहारी बाबूने मुझसे जो कुछ समझाकर कहा, उसका भी इशारा यही ईर्ष्या थी और मिस नलिनीने भी स्पष्ट शब्दोंमें उसे ईर्ष्या बतलाया। दयालबाबूने भी उसीका समर्थन किया। सुनकर मैं तो लज्जासे मरा जाता हूँ, अथ च सच कहता हूँ आपसे, कि इतने लोगोंके बीच मुझ जैसे एक नगण्य आदमीमें विलासबाबूके ईर्ष्या करने लायक क्या है, यह आज तक मैं नहीं सोच पाया। (क्षणभर मौन रहकर) आप लोग तो आवश्यक होनेपर सभी लोगोंसे बातचीत करती हैं। इसमें उन्होंने क्या दोष देख पाया ? खैर, जो कुछ हो, आप लोग मुझे माफ करेंगे, और वह बँगलामें क्या कहते हैं—अभि—अभिनंदन—मैं भी आपका वही किये जाता हूँ। आप लोग सुखी हों।

विजया—(मुँह दूसरी ओर फेरकर) अभिनंदन आज न करके, उसी दिन आशीर्वाद दीजिए न !

नरेन्द्र—उस दिन ? लेकिन तब तक मैं यहाँ ठहर सकूँगा ?

विजया—ना, यह न होगा। रासबिहारी बाबूको जबान दे चुके हैं आप। आपको ठहरना ही होगा।

नरेन्द्र—जबान तो नहीं दी है, लेकिन जबान देनेकी ही इच्छा होती है। अगर रहा तो अवश्य ही आऊँगा। (विजया छिपाकर आँखें पोंछ डालती है) अच्छी बात है। मुझे और एक बातके लिए क्षमा माँगना है। उस दिन एकाएक कालीपदके हाथ माइक्रोस्कोप क्यों भेज दिया था ?

विजया—अपनी चीज आपने आप ही तो वापस माँगी थी।

नरेन्द्र—सो तो ठीक है ! लेकिन दामोंकी बात तो कहला नहीं भेजी। तब तो—

विजया—मुझसे भूल हुई थी। लेकिन उस भूलकी सजा भी तो आपने मुझे कुछ कम नहीं दी !

नरेन्द्र—लेकिन कालीपदने जो कहा—

विजया—वह चाहे जो कहे, लेकिन आपने यह कैसे विश्वास कर लिया कि आपको उपहार देनेको स्पर्द्धा मैं कर सकती हूँ ? अगर सचमुच ही ऐसी स्पर्द्धा मैंने की थी, तो आपने अपने हाथसे उसका दण्ड क्यों नहीं दिया ? नौकरके द्वार मेरा अपमान क्यों किया ? आपका मैंने क्या बिगाड़ा था ?

[अन्तके शब्द उसके गलेमें जैसे अटक गये । वह उठकर खिड़कीके पास जा खड़ी हुई और बाहर ताकने लगी ।]

नरेन्द्र— उसी समय मेरी समझमें आ गया था कि यह काम ठीक नहीं हुआ। उसके बाद बहुत सोचता रहा—और यह देखिए—यह ईर्ष्या बेहद बुरी चीज है। यह केवल अपनी झोंकमें आप ही नहीं बढ़ती जाती, बल्कि छूतकी बीमारीकी तरह दूसरेपर भी हमला करनेसे बाज नहीं आती। आज तो मैं निश्चयसे जानता हूँ कि विलास बाबूकी मुझसे ईर्ष्या करने जैसी भूल और नहीं हो सकती। किन्तु उस दिन नलिनीके मुखसे यह ईर्ष्याका शब्द मेरे कानोंमें पहुँचकर जैसे बिंध गया है—जैसे किसी भी तरह इसे भूल नहीं पाता।

विजया—(वैसे ही दूसरी ओर मुँह फेरे हुए) फिर भूल कैसे गये ?

नरेन्द्र—(हँसकर) बहुत कोशिश करके। बड़ी मुश्किलसे। केवल यही बार बार मनमें आने लगा कि निश्चय ही ईर्ष्याका कोई कारण है, नहीं तो अकारण कोई किसीसे डाह नहीं करता। आपसे आज मैं सच कहता हूँ, उसके बाद कई दिन तक चौबीसों घण्टे सिर्फ आपका ही खयाल मेरे मनमें बना रहता था और आपने ज्वरके जोरमें जो बातें कही थीं, वे ही रह रहकर याद आती थीं। वही तो मैंने अभी कहा कि यह कैसा भयानक संक्रामक रोग है ! काम काज चूल्हेमें गया, दिन-रात आपकी ही बातें मनमें चक्कर काटती हैं ! इसकी क्या जरूरत थी, बताइए भला ? फिर क्या केवल यही ? आपको देखनेके लिए ही दो-तीन दिन इसी राहसे पैदल गया-आया हूँ। कुछ दिन तक एक अच्छा पागल भूत मेरे कंधेपर सवार रहा।

[इतना कहकर वह हँसने लगा। विजया कुछ न कहकर कमरेके बाहर चली गई।]

नरेन्द्र—(उसी ओर विस्मयके साथ देखकर) अब यह क्या हुआ ? नाराज होनेकी क्या बात मैंने कह दी ?

(कालीपदका प्रवेश।)

कालीपद—आप चले न जाइएगा। माजीने कहला भेजा है कि आप चाय पीकर जाइएगा।

नरेन्द्र—ना ना, उन्हें जाकर मना कर दो। मैं दयाल बाबूके यहाँ चाय पियूँगा।

कालीपद—लेकिन माजीको दुःख होगा।

नरेन्द्र—नहीं, दुःख न होगा। उनसे जाकर कहो, आज मुझे समय नहीं है।

कालीपद—कहता हूँ जाकर, लेकिन वह कभी न मानेंगी।

[एक ओरसे कालीपदका प्रस्थान और दूसरी ओरसे विजयाका प्रवेश।]

नरेन्द्र—इस तरह एकाएक खूब चली गई!

विजया—किस तरह चली गई?

नरेन्द्र—जैसे नाराज होकर।

विजया—तब तो देखती हूँ, आपकी आँखोंकी नजर खुल गई है!—अच्छा, उस भूतकी कहानी अब समाप्त कर दीजिए।

नरेन्द्र—किस भूतकी कहानी?

विजया—वही जो पागल भूत कुछ दिन तक आपके कन्धेपर सवार था? वह उतर तो गया न?

नरेन्द्र—(हँसकर) ऊः—वह? हाँ, वह उतर गया।

विजया—तो यह कहिए कि आप बच गये। नहीं तो कौन जाने, और कितने दिन वह आपको इस राहमें घुड़दौड़ कराता फिरता।

कालीपद—(प्रवेश करके, नरेनकी ओर इशारा करके विजयासे) यह चाय नहीं पियेंगे माजी।

विजया—(कालीपदसे) क्यों नहीं पियेंगे? जा, तू चाय बनाकर लानेके लिए कह दे। (कालीपदका प्रस्थान।)

नरेन्द्र—मुझे माफ कीजिए, आज मैं चाय नहीं पी सकूँगा।

विजया—क्यों नहीं पियेंगे? आपको निश्चय ही चाय पीकर जाना होगा।

नरेन्द्र—(सिर हिलाकर) ना, ना, यह ठीक न होगा। उस दिन उनसे वादा किया था कि आज आकर उन लोगोंके घर चाय पियूँगा। न पीनेसे वे बहुत दुःखित होंगे।

विजया—वे लोग कौन ? दयाल बाबूकी स्त्री या नलिनी ?

नरेन्द्र—दोनों ही दुखी होंगी। शायद मेरे लिए वे सब तैयार किये बैठी होंगी।

विजया—तैयारीकी बात छोड़िए; लेकिन दुःख पानेको क्या केवल वे ही हैं, और कोई नहीं है क्या ?

नरेन्द्र—और कोई कौन, दयाल बाबू ? (हँसकर) नहीं नहीं—वह बड़े शान्त आदमी हैं—सीधे-सादे निरीह। इसके सिवा उन्हें तो मैंने अभी इसी घरमें देखा है। उनका डर नहीं है; किन्तु वे बहुत नाराज होंगी।

विजया—वे कौन नरेन बाबू ? वे और कोई नहीं हैं—हैं केवल नलिनी। यहाँ खा-पीकर जानेसे वही नाराज होंगी। कहिए, उन्हींका आपको डर है, कहिए, यही बात सत्य है ?

नरेन्द्र—नाराज होनेमें आप कोई कम नहीं हैं। आपको जबान देकर अगर वहाँ खा-पी आता तो क्या आप ही कम नाराज होतीं ?

विजया—तो जाइए, जल्दी जाइए। आपको बहुत देर हो गई है, अब और न रोकूँगी।

नरेन्द्र—हाँ, देर जरूर हो गई है। लौट जानेके लिए साढ़े सात बजेकी गाड़ी शायद अब न पकड़ सकूँगा।

विजया—पकड़ क्यों न पावेंगे ? क्या नलिनी अबसे सात बजे तक आपको खिलाती रहेंगी ? यहाँ तो तनिक-सा खाकर ही आप नहीं-नहीं करने लगते हैं। सैकड़ों अनुरोध-उपरोध करने पर भी बात नहीं रखते; उपेक्षा करके उठ बैठते हैं।

नरेन्द्र—यह आपका बिल्कुल उल्टा अभियोग है। आदमीको अधिक खिलानेका रोग आपसे बढ़कर संसारमें और किसीको है क्या ? और उपेक्षा करके किसीका निस्तार है भला ? डरसे ही जान सूख जाती है।

विजया—लेकिन आप तो नहीं डरते। यही देखिए, मजेसे उपेक्षा करके चले जा रहे हैं।

नरेन्द्र—उपेक्षा करके नहीं, उन लोगोंसे वादा कर चुका हूँ, इसीसे जा रहा हूँ। और केवल खाना ही नहीं है, एक किताबकी कुछ बातें नलिनीको समझमें नहीं आ रही हैं, वे भी समझानी होंगी।

विजया—कौन-सी किताब ?

नरेन्द्र—एक डाक्टरीकी किताब है। उनकी इच्छा बी० ए० पास करनेके बाद मेडिकल कालिजमें भर्ती होनेकी है। इसीसे जो कुछ साधारण-सा ज्ञान मुझे है, उससे उनकी थोड़ी-बहुत सहायता कर देता हूँ।

विजया—आप क्या उनके प्राइवेट ट्यूटर हैं ? वेतन क्या पाते हैं ?

नरेन्द्र—यह कहना आपका अन्याय है। आपकी बातचीतके ढंगसे मुझे अक्सर जान पड़ता है कि आप उनपर प्रसन्न नहीं हैं। मगर वह आपपर कितनी श्रद्धा रखती हैं, यह आप नहीं जानतीं। यहाँ आनेके बादसे जितने अच्छे काम आपने किये हैं, उन सबका बखान मैं उनके मुखसे सुनता रहता हूँ। आपकी कितनी बातें वह किया करती हैं ! आप दोनों एक ही कालिजमें पढ़ती थीं; आप बड़ी-सी गाड़ी-जोड़ीपर बैठकर आती थीं; सब लड़कियाँ आपको ताकती रहती थीं। नलिनी कह रही थी—आप जैसी रूपवती थीं, वैसा ही आपका नम्र आचरण और मधुर व्यवहार था। आपसे उनका परिचय न था; किन्तु तभीसे वह और अन्य सभी लड़कियाँ मन-ही-मन आपको प्यार करती थीं। इसी तरहकी न जाने कितनी बातें होती रहती हैं।

विजया—जब केवल बातें ही होती रहती हैं तो आप पढ़ाते किस समय हैं ?

नरेन्द्र—पढ़ाता कब हूँ ? मैं क्या उनका मास्टर हूँ ? या मेरे ऊपर उन्हें पढ़ानेका भार है ? आपकी सब बातें ऐसी टेढ़ी होती हैं कि जान पड़ता है, सीधी बात कहना आपने सीखा ही नहीं।

विजया—सीखती कैसे ? मास्टर तो कोई था नहीं।

नरेन्द्र—फिर वही टेढ़ी बात !

विजया—(हँसी आ जाती है) लेकिन आप जायेंगे कब ? खाना-पीना न हो आज न हुआ सही, लेकिन पढ़ाना न होनेसे तो भारी क्षति होगी !

नरेन्द्र—फिर वही ! जाता हूँ। (टोपी हाथमें लेकर कई पग आगे बढ़कर द्वारके पास सहसा ठिठककर) एक बात कहनेको थी, लेकिन डर लगता है, कहीं आप नाराज न हो जायँ।

विजया—नाराज ही अगर होऊँगी तो उसकी आपको क्या चिन्ता है ? देना

अदा कर दो—कहकर लाल आँखें दिखाऊँ, यह भी तो अब नहीं हो सकता। डर आपको काहेका है ?

नरेन्द्र—फिर वैसी ही टेढ़ी बातें! लेकिन सुनिए। यहाँ जबसे आप आई हैं, आपने बहुतसे सत्कार्य किये हैं। कितने ही विपत्तिके मारे गरीब आसामियोंका बकाया लगान माफ कर दिया है; कितने ही दीन-दुखी गरीबोंको दान किया है; धर्म-मन्दिरकी स्थापना की है—

विजया—यह सब किसने सुनाया ? नलिनीने ?

नरेन्द्र—हाँ, उन्हींके मुँहसे सुना है। कितने ही गरीब दरिद्र बहुत कुछ पा गये, मैं ही क्या कुछ न पाऊँगा ? मुझे आज वह माइक्रोस्कोप उपहार दीजिए; कल या परसों उसके दाम भेज दूँगा।

विजया—दाम देकर उपहार लेनेकी बुद्धि किसने आपको दी है ? नलिनीने ?

नरेन्द्र—ना ना, उन्होंने नहीं। उन्होंने सिर्फ यह कहा था कि वह आपके तो किसी काम आया नहीं, लेकिन वह पावें तो उससे बहुत कुछ सीख सकती हैं, और वह सीखना बादको उनके बहुत काम आवेगा।

विजया—अर्थात्, वह जा पहुँचेगा उनके हाथमें। मैं बेचूँ तो आप उसे ले जाकर उन्हें उपहार देंगे—यही तो आपका प्रस्ताव है ?

नरेन्द्र—ना ना, यह नहीं है। बात यह है कि वह आपके भी किसी काम नहीं आया, और अन्य सभीकी आँखोंमें खटकनेवाला चक्षुशूल बन गया है। इसीसे कह रहा था—

विजया—कहनेकी कोई जरूरत न थी नरेन बाबू। आपके पास रुपयोंकी कमी नहीं है; दूकानोंपर और भी माइक्रोस्कोप मिल सकते हैं। मोल लेकर ही अगर उपहार देना हो, तो उन्हें बाजारसे ही खरीद दीजिएगा। यह मेरे लिए चक्षु-शूल होकर ही मेरे पास रहे।

नरेन्द्र—मगर—

विजया—अगर-मगरकी कोई जरूरत नहीं। आप बेकार अपना भी समय नष्ट कर रहे हैं और मेरा भी। और भी तो काम हैं।

नरेन्द्र—(क्षणभर हतबुद्धि-सा विजयाकी ओर ताकता रहता है) मैं आपके सामने सब बातें अच्छी तरह समझाकर कह नहीं पाता और आप

बिगड़ उठती हैं। हो सकता है, आप मनमें समझती हों कि मैं अपनी अवस्थाको लाँघकर आप लोगोंकी बराबरीका होकर चलना चाहता हूँ; लेकिन यह कभी सच नहीं है। आपके घरमें आते हुए मुझे कितना संकोच होता है, यह मैं ही जानता हूँ। यहाँ आकर क्या कहते क्या कह बैठता हूँ, अपना संतुलन ठीक नहीं रख सकता और आप खीझ उठती हैं। लेकिन यह मेरी अन्यमनस्क प्रकृतिका दोष है—मेरा मंशा आपकी अमर्यादा करना नहीं होता। खैर, अब मैं फिर आपको खिझाने नहीं आऊँगा। नमस्कार। (धीरे धीरे प्रस्थान।)

[तेजीसे पैर रखते हुए व्यग्र भावसे रासबिहारीका प्रवेश। उनके पीछे दयाल हाथमें चाँदीके पात्रमें फूल, चंदन, अक्षत और एक जोड़ी सोनेके मोटे कड़े लिये हुए हैं। दयाल बाबूके पीछे दो नौकर हाथमें फूल-मालाएँ इत्यादि लिये हैं। उनके पीछे विजयाके दफ्तरके सब कर्मचारी हैं। विजया कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी होती है।]

रास०—बेटी विजया, आज नये सालका पहला दिन है, यह क्या तुम्हें स्मरण है?

विजया—कुछ देर पहले ही आप कह गये हैं, नहीं तो नहीं था।

रास०—(मुसकाकर) तुम भूल सकती हो, लेकिन मैं कैसे भूलूँ! यही तो मेरा ज्ञान-ध्यान है। वनमाली जीते होते तो आजके दिन वह क्या करते, याद आता है बेटी?

विजया—याद क्यों नहीं आता। आजके दिन वह मुझे विशेष करके आशीर्वाद देते।

रास०—वनमाली नहीं हैं, लेकिन मैं तो हूँ। सोचा था, यह कर्त्तव्य सवेरे ही पूरा करूँगा; तुम दोनोंके स्वास्थ्य, आयु, निर्विघ्न जीवनकी भिक्षा भगवान्‌के श्रीचरणोंमें माँगूँगा। किन्तु कई कारणोंसे उसमें बाधा आ पड़ी। पर बाधा तो सत्य नहीं है, वह मिथ्या है। उसे तो मैं स्वीकार नहीं कर सकता बेटी। जानता हूँ आज तुम्हारा मन अस्थिर है, तो भी मैंने दयालसे कहा—भाई, आजके इस पुण्य दिनको मैं व्यर्थ न जाने दे सकूँगा; तुम तैयारी करो। तैयारी चाहे जितनी अकिञ्चन हो,—मैं आप भी तो बड़ा अकिञ्चन हूँ बेटी! दयालने कहा—अब समय कहाँ है? दिन जा रहा है। मैंने जोर देकर कहा—बेला नहीं बीती—अभी

समय है। मैं अब कोई विघ्न-बाधा नहीं मानूँगा। आयोजनकी स्वल्पतासे क्या आता जाता है दयाल ! आडम्बरसे केवल बाहरके लोगोंको ही बहलाया जाता है; लेकिन यह तो मेरी विजया है। बेटी समझ ही लेगी कि यह उसके पितृतुल्य काका बाबूकी हार्दिक शुभकामना है। लोग दौड़े गये मेरे घर। माली बागमें फूल तोड़नेको दौड़ गया। मांगलिक सामग्री इकट्ठी होनेमें देर नहीं लगी। मुकुट-माला वगैरह नहीं है, न सही—काका बाबूका आशीर्वाद तो है !—जैसे ही सोचा, विलास क्यों नहीं आया, वैसे ही याद आया कि वह आवे कैसे ? यह साहस उसमें कहाँ है ? फिर सोचा अच्छा ही हुआ कि वह लज्जाके मारे कहीं लुका बैठा है। ऐसा ही होता है बेटी—अपराधका दण्ड ऐसे ही प्राप्त होता है।—जगदीश्वर ! (घड़ीभर बाद) तब दफ्तरमें आकर आवाज लगाई कि तुम कौन कौन हो यहाँ, सब आओ हमारे साथ, आजके दिन मैं तुम लोगोंके निकट भी चिरदिनके लिए विजयाके कल्याणकी भिक्षा माँग लेना चाहता हूँ।—आओ तो बेटी, मेरे पास।

[इतना कहकर वह आप ही आगे बढ़ जाते हैं। विजया उद्भ्रान्त मुखसे अबतक चुपचाप खड़ी ताक रही थी। अब उसने गर्दन झुका ली। रासबिहारीने उसके माथेमें चन्दनका टीका लगाकर ऊपर फूल बिखेर दिये।)

रास०—संसारमें आनंद लाभ करो; स्वास्थ्य, सम्पत्ति और आयु बढ़े; ब्रह्मपदमें अटल श्रद्धा, भक्ति और विश्वास हो। आजके पुण्य दिनमें तुम्हारे काका बाबूका यही आशीर्वाद है बेटी।

[विजया दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगाकर नमस्कार करती है। अनेक लोगोंके हाथमें फूल थे। उन्होंने वे फूल विजयाके ऊपर बिखेर दिये।]

रास०—देखूँ बेटी, तुम्हारे दोनों हाथ—(इतना कहकर विजयाके हाथ खींचकर उनमें एक एक करके दोनों कड़े पहनाकर) रुपयोंके हिसाबसे इन कड़ोंकी कीमत नहीं आँकी जा सकती। यह तुम्हारी—(एक लंबी साँस छोड़कर) यह मेरे विलासकी माताके हाथके आभूषण हैं। देखो बेटी, कितने घिस गये हैं ! मरते समय उन्होंने कहा था कि मैं इन्हें कभी नष्ट न करूँ, ये केवल आजके ही दिनके लिए—(रासबिहारीके आसुओंसे रुँधे कण्ठसे आगे बोल नहीं निकलते।)

दयाल—(आशीर्वाद करनेके लिए पास आकर व्यस्त भावसे) बेटी, तुम्हारा चेहरा बहुत पीला दिखाई पड़ रहा है। तबियत तो कुछ खराब नहीं है ?

विजया—(सिर हिलाकर) नहीं।

दयाल—सुखी होओ, आयुष्मती होओ, जगदीश्वरसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ।

[विजया उनके पैरोंके पास घुटने टेककर प्रणाम करती है।]

दयाल—(व्यस्त होकर) बस बस, हो गया बेटी। आनन्दमय भगवान् तुमको आनन्दम रखें।—लेकिन मुख देखकर तो तुम बहुत ही थकी और सुस्त-सी जान पड़ती हो। तुम्हें विश्राम करनेकी जरूरत है।

रास०—विश्रामकी जरूरत तो है ही दयाल, बड़ी जरूरत है। (विजयासे) आज वनमालीका उल्लेख करके शायद तुम्हारे मनको मैंने बड़ा कष्ट पहुँचाया है, लेकिन इसके विना भी काम न चलता। आजके शुभ दिनमें उन्हें याद करना मेरा कर्त्तव्य था। खैर, अब और बातें करके मैं तुम्हें कष्ट नहीं दूँगा बेटी, जाओ विश्राम करो।—दयाल, चलो भाई, हम लोग चलें। (कर्मचारियोंकी ओर लक्ष्य करके) तुम सभी अवस्थामें बड़े हो; तुम लोगोंकी यह मंगल-कामना कभी निष्फल न होगी। केवल दयालका ही नहीं, तुम लोगोंका भी मैं कृतज्ञ हूँ। अच्छा, अब हम सब जने चलें, बेटीको कुछ विश्राम करनेका अवसर दें।

[एक एक करके सब जाते हैं।]

[विजया हाथके कड़े उतार डालती है और चुपचाप लौट आकर कुर्सीपर बैठकर टेबिलपर सिर टिका देती है। क्षणभर बाद परेशका प्रवेश।]

परेश—(क्षणभर चुपचाप विजयाको ताकते रहनेके बाद) माजी !

विजया—(सिर उठाकर) क्या है रे परेश ?

परेश—तुम्हारा तो ब्याह होगा माजी !

विजया—ब्याह होगा ? यह तुझसे किसने कहा रे ?

परेश—सभी लोग कहते हैं। अभी अभी 'आशीर्वाद'+ हो गया है, जो हम सबने देखा है !

+ विवाहकी एक रस्म, जो वरपक्षकी ओरसे ब्याह पक्का होनेकी सूचक होती है।—अनुवादक

विजया—कहाँसे देखा ?

परेश—उस दरवाजेकी फाँकसे। मैं, मा, सतूकी बुआ, सभीने।—दो आने पैसे दो न माजी, एक अच्छी 'चर्खी' मोल लाऊँगा। (खिड़कीके बाहर नजर पड़ते ही) वह देखो, वह डाक्टर बाबू जा रहे हैं माजी! लपकते हुए स्टेशनकी तरफ जा रहे हैं।

विजया—(झपटकर खिड़कीके पास आकर, और बाहर देखकर) उन्हें पकड़ ला सकता है परेश ? तुझे बहुत बढ़िया चर्खी खरीद दूँगी।

परेश—दोगी न माजी ? (कहकर दौड़ लगाता है।)

(परेशकी माका प्रवेश।)

परेशकी मा—आज क्या कुछ खाओ-पियोगी नहीं बिटिया रानी ? एक बूँद चाय भी नहीं पी तुमने ? (टेबिलके पास आकर दोनों कड़े हाथमें लेकर) यह क्या किया ! आजके दिन क्या हाथसे इन्हें उतारना चाहिए बिटिया रानी ! फिर तुम ऐसी भुलक्कड़ हो कि शायद यहीं छोड़कर चली जाओगी—जिसकी नजर पड़ेगी वही क्या फिर देगा ?—हाँ देखो, अपने परेशको एक अँगूठी तुम्हें बनवा देनी पड़ेगी; उसकी यह बहुत दिनोंकी साध है।

विजया—और तुमको एक हार—क्यों ?

परेशकी मा—तुम बेशक हँसी कर रही हो; लेकिन क्या तुम यह समझती हो कि मैं वह विना लिये छोड़ूँगी ?

विजया—नहीं, छोड़ोगी क्यों ? यही तो तुम लोगोंके पानेका दिन है !

परेशकी मा—सच ही तो है ? इन सब कामकाजोंमें नहीं पावेंगे तो और कब पावेंगे, तुम्हीं बताओ ?—अच्छा, एक प्याली चाय और कुछ खानेको ले आऊँ क्या ? न हो, अपने सोनेके कमरेमें चलो, मैं वहीं दे आऊँगी।

विजया—यही करो—मेरे सोनेके कमरेमें ही पहुँचा दो।

परेशकी मा—जाती हूँ बिटिया रानी, महाराजसे कुछ गरम-गरम पूरी बनानेको कह देती हूँ। (प्रस्थान।)

[परेश और उसके पीछे नरेन्द्र, दोनों प्रवेश करते हैं।]

विजया—यह ले परेश रुपया। खूब अच्छी-सी चर्खी ले लेना—ठगाना न कहीं !

परेश--नाः — [पलक मारते ही आँखोंसे ओझल हो जाता है ।]

नरेन्द्र—ओः, इसीसे उसे इतनी गरज थी ! मुझे साँस लेनेका भी अवकाश नहीं देना चाहता था । चर्खी खरीदनेका रुपया घूस दिया गया ! लेकिन क्यों ? एकाएक फिर क्यों मेरी पुकार हुई ?

विजया—(क्षणभर नरेन्द्रके मुखकी ओर ताककर) मुँह तो सूख रहा है—चेहरा उतर गया है । क्या खाया-पिया ?

नरेन्द्र—खाया-पिया नहीं । दर्वाजे तक जाकर लौट आया, भीतर घुसनेको जी ही नहीं चाहा ।

विजया—क्यों ?

नरेन्द्र—मालूम नहीं क्यों ! जीमें आया, अब कहीं, किसीके पास न जाऊँगा—इधर अब आऊँगा ही नहीं ।

विजया—मैं बुरी हूँ, बेकार हो क्रोध करती हूँ; और आप बहुत भले आदमी हैं—क्यों ?

नरेन्द्र—किसने कहा कि आप बुरी हैं ?

विजया—आपने कहा । मेरा ही अपमान किया और मुझीको दण्ड देनेके लिए विना खाये-पिये कलकत्ते चले जा रहे हैं—मैंने भला आपका क्या बिगाड़ा है !

[कहते-कहते विजयाकी आँखोंमें आँसू भर आते हैं और उन्हींको छिपानेके लिए वह खिड़कीके बाहर मुँह घुमाकर खड़ी हो जाती है ।]

नरेन्द्र—कैसे अचरजकी बात है ! मैं अपने डेरेको लौटा जा रहा हूँ, इसमें भी मेरा दोष है !

(कालीपदका प्रवेश ।)

कालीपद—माजी, आपके सोनेके कमरेमें खाना पहुँच गया ।

विजया—(नरेन्द्रसे) चलिए, आपका खाना परोसा रखा है ।

नरेन्द्र—मेरा खाना कैसा ? मैं तो आप ही नहीं जानता था कि यहाँ फिर आऊँगा ।

विजया—मगर मैं जानती थी । चलिए ।

नरेन्द्र—फिर मेरे खानेकी व्यवस्था आपके सोनेके कमरेमें ? यह भी कहीं

हो सकता है ?—हाँ कालीपद, किसके लिए खाना परोसा गया है, सच सच तो कहो ?

कालीपद—जी, माजीके लिए। आज सारा दिन बीत गया, इन्होंने कुछ नहीं खाया है।

नरेन्द्र—इसीसे वह सब मुझे खाना होगा ? देखिए, यह अन्याय हो रहा है। इतना जुल्म मुझपर न ढाइए।

विजया—कालीपद, तू अपने कामसे जा। जो जानता नहीं, उसमें क्यों दखल देता है तू ? (नरेन्द्रसे) चलिए, ऊपरके कमरेमें।

नरेन्द्र—चलिए। लेकिन यह आपका बड़ा अन्याय है।

(सबका प्रस्थान।)

द्वितीय दृश्य

स्थान—विजयाके सोनेका कमरा

[विजया और नरेन्द्र प्रवेश करते हैं। एक टेबिलके ऊपर तरह तरहकी खाने-पीनेकी सामग्री रखी है।]

विजया—(टेबिलकी ओर इशारा करके) बैठिए, भोजन कीजिए।

नरेन्द्र—(बैठते बैठते) आपके खानेकी थाली भी यहीं लाकर न दे जाय। सारे दिन आपने कुछ खाया नहीं।

विजया—खाया नहीं, इसलिए यहाँ ले आवेगा ? आप कौन हैं जो आपके सामने एक टेबिलपर बैठकर मैं खाऊँगी ? अच्छा प्रस्ताव है !

नरेन्द्र—मेरी सभी बातोंमें ऐब निकालना जैसे आपका स्वभाव हो गया है। इसके सिवा आप ऐसे रूढ़ वचन बोल्ती हैं जो हृदयमें खटकते हैं ! आप ऐसी कड़ी बातें क्यों कहती हैं ?

विजया—जान पड़ता है, और कोई आपसे कड़ी बातें नहीं कहता ?

नरेन्द्र—नहीं, कोई नहीं। सिर्फ आप ही कहती हैं। मेरी समझमें नहीं आती कि आप मुझपर क्यों इतनी नाराज हैं ?

विजया—वह टूटा माइक्रोस्कोप बेचकर जबसे आप मुझे ठग ले गये हैं तबसे

मैं आपसे सख्त नाराज हूँ। मेरा क्रोध किसी तरह शान्त नहीं होता। आपको देखते ही वह माइक्रोस्कोप याद आ जाता है।

नरेन्द्र—झूठ, बिल्कुल झूठ। आप खूब जानती हैं कि इस मामलेमें आपकी ही जीत हुई है।

विजया—अच्छी तरह जानती हूँ कि मैं नहीं जीती—पूरी तौरसे ठगा गई हूँ। खैर, इसे छोड़िए—आप खाने बैठिए। सात बजेकी गाड़ी तो छूट ही गई, नौ बजेकी गाड़ी भी क्या चली जाने देंगे ?

नरेन्द्र—ना ना, चली जाने न दूँगा। ठीक समय पर पकड़ लूँगा।

[नरेन्द्र भोजन करने लगता है। कालीपद पर्दा समेटकर झाँकता है।]

कालीपद—माजी, आपका खाना—

विजया—ना, अभी नहीं।　　　　(कालीपदका प्रस्थान।)

नरेन्द्र—आपके घरमें नौकरोंके मुँहका यह 'मा' सम्बोधन मुझे बहुत ही अच्छा लगता है।

विजया—नौकर लोग क्या कुछ और भी कहते हैं ?

नरेन्द्र—कहते क्यों नहीं। मेमसाहब कहना—

विजया—आप बड़े निन्दक हैं। केवल पराई चर्चा किया करते हैं।

नरेन्द्र—जो देखता हूँ, वह कहूँ नहीं ?

विजया—ना। आपका काम केवल मुँह बंद करके खाना-भर है। थालीमें कुछ भी पड़ा न रहना चाहिए।

नरेन्द्र—तब तो मेरे प्राण ही न बचेंगे। इतनेमें ही मेरा पेट भर आया है। इतना कौन खायगा ?

विजया—ना, पेट नहीं भर आया। बल्कि एक काम कीजिए, पराई निन्दा करते-करते ही अन्यमनस्क होकर खाइए। सब खाये विना किसी तरह छुटकारा न होगा।

नरेन्द्र—इतना खा लेनेपर भी आप कहती हैं कि अभी पेट नहीं भरा, खाना नहीं हुआ; किन्तु कलकत्तेमें मैं जो रोज खाता हूँ, उसे अगर देखें तो अवाक् हो जायँगी। देखती नहीं हैं, इन्हीं कई महीनोंमें कैसा दुबला हो गया हूँ मैं। मेरे डेरेका रोटी बनानेवाला महाराज जैसा पाजी है, वैसा ही बदमाश नौकर भी

मिल गया है। सवेरे खाना बनाकर न जाने कहाँ चल देता है, पता ही नहीं चलता। मुझे किसी दिन लौटनेमें दो बज जाते हैं और किसी दिन चार बज जाते हैं। वही ठंडा सूखा हुआ भात और सूखी रोटी खानी पड़ती है। दूध किसी दिन बिल्ली पी जाती है, किसी दिन कौए खिड़की खुली पाकर घुस आते हैं और सब इधर-उधर बिखेरकर छीछाले दर कर डालते हैं, जिसे देखकर ही घृणा होती है। महीनेमें आधे दिन तो खाना ही नहीं होता।

विजया—ऐसे सब नालायक नौकर चाकरोंको आप निकाल बाहर क्यों नहीं करते? अपने डेरेमें इतना रुपया खर्च करके भी अगर इतना कष्ट उठाना पड़ता है तो फिर नौकरी ही क्यों की जाय?

नरेन्द्र—एक हिंसाबसे आपका कहना सच है। एक दिन बक्सके भीतरसे किसीने दो सौ रुपए चुरा लिये। एक दिन आप ही कहीं एक सौ रुपएका नोट खो आया। अन्यमनस्क लोगोंको पगपगपर ही विपदा होती है कि नहीं। (जरा थमकर) मगर बात यह है कि दुःख-कष्ट बहुत दिनोंसे सहते आनेके कारण अब उतना खलता नहीं। केवल कभी कभी जोरकी भूख लगने पर ही खाने-पीनेका कष्ट असह्य जान पड़ता है।

[विजया सिर झुकाये चुपचाप सुनती रहती है।]

नरेन्द्र—असलमें नौकरी मुझे अच्छी नहीं लगती, और मुझसे होती भी नहीं। मेरी जरूरतें बहुत ही कम हैं। आप जैसा कोई बड़ा आदमी दोनों जून खानेको दे देता और मैं अपने काममें लगा रह सकता, तो और कुछ न चाहता। लेकिन वैसे बड़े आदमी अब कहाँ हैं? (एकाएक हँसकर) वे बड़े सयाने हो गये हैं—एक पैसा भी फिजूल खर्च करना नहीं चाहते!

[यह कहकर वह फिर हँस पड़ता है। विजया वैसे ही विना कुछ बोले बैठी रहती है।]

नरेन्द्र—लेकिन आपके पिताजी अगर जिंदा होते तो शायद इस समय मेरा बड़ा उपकार हो सकता—वह निश्चय ही इस उंछवृत्तिसे मेरी रक्षा करते।

विजया—यह आपने कैसे जाना? उन्हें तो आप पहचानते या जानते नहीं थे।

नरेन्द्र—ना। मैंने भी उनको कभी नहीं देखा और उन्होंने भी शायद मुझे

कभी नहीं देखा। लेकिन तो भी वह मुझे खूब प्यार करते थे। किसने मुझे रुपए देकर विलायत शिक्षाके लिए भेजा था, जानती हैं आप? उन्होंने ही—अच्छा, हमारे ऋणके सम्बन्धमें क्या वह कभी कुछ आपसे नहीं कह गये?

विजया—कहना ही तो सम्भव है। लेकिन आप ठीक क्या इशारा कर रहे हैं, यह समझे विना तो मैं जवाब नहीं दे सकती।

नरेन्द्र—(क्षणभर सोचकर) जाने दीजिए। अब यह आलोचना बिल्कुल बेकार है।

विजया—(व्यग्र होकर) ना, कहिए—आपको कहना ही होगा—मैं सुनूँगी ही।

नरेन्द्र—लेकिन जो मामला खतम हो गया, उसके बारेमें सुनकर ही क्या होगा, बताइए?

विजया—ना, यह न होगा, आपको बताना ही होगा।

नरेन्द्र—(हँसकर) कहना केवल निरर्थक ही नहीं है—कहनेमें मुझे लज्जा भी लगती है। शायद आप अपने मनमें यह सोचें कि मैं कौशलसे आपके सेंटीमेंट (Sentiment—भावुकता) को उभार कर—

विजया—(अधीर भावसे) मैं अब और खुशामद नहीं कर सकती—आपके पैरों पड़ती हूँ, बतलाइए।

नरेन्द्र—खाने-पीनेके बाद?

विजया—नहीं, अभी।

नरेन्द्र—अच्छा, कहता हूँ, कहता हूँ। लेकिन उसके पहले एक बात आपसे पूछता हूँ। मेरे घरके बारेमें क्या सचमुच ही उन्होंने किसी दिन आपसे कुछ नहीं कहा? (विजया अधिकतर असहिष्णु या उतावली हो उठती है) अच्छा, खफा होनेकी जरूरत नहीं, मैं कहता हूँ। जब मैं विलायत गया था, तब अपने पिताजीके मुखसे सुना था कि आपके बापूजी ही मुझे भेज रहे हैं। आज चार-पाँच दिन हुए, दयाल बाबूने मुझे कई चिट्ठियोंका एक बंडल दिया है। नीचेके जिस कोठेमें मेरा टूटा-फूटा कुछ असबाब पड़ा है, उसीमें एक मेजकी टूटी दराजमें कुछ चिट्ठियाँ थीं। पिताजीकी चीज होनेके कारण दयाल बाबूने वह बंडल मेरे ही हाथमें दिया। पढ़कर देखा, उनमें दो चिट्ठियाँ आपके

पिताजीके हाथकी लिखी थीं। शायद आपने सुना होगा कि आखिरी दिनोंमें मेरे बाबूजीने ऋणके फेरमें पड़कर जुआ खेलना शुरू कर दिया था। जान पड़ता है, वही इशारा एक *चिट्ठीके आरंभमें है। उसके बाद नीचेके हिस्सेमें एक जगह* पर आपके पिताजीने उपदेशके मिससे सान्त्वना देकर बाबूजीको लिखा है कि मकानके लिए चिन्ता नहीं करना। नरेन्द्र मेरा भी तो बेटा है—मैं वह उसीको दहेजमें देता हूँ।

विजया—(सिर उठाकर) उसके बाद ?

नरेन्द्र—उसके बाद और और सब बाते हैं। लेकिन यह पत्र बहुत दिन पहलेका लिखा हुआ है। बहुत संभव है, उनका यह विचार बादको बदल गया हो और इसी लिए उन्होंने कोई बात आपसे कहनी आवश्यक न समझी हो।

विजया—(कई सेकेंड तक स्थिर रहकर) तो कहिए, आप घरका दावा करेंगे ? (हँसती है)

नरेन्द्र – (हँसकर) दावा करूँगा तो आप को ही गवाहके रूपमें तलब करूँगा। आशा है, आप सच ही बोलेंगी।

विजया—(गर्दन हिलाकर) निश्चय। लेकिन मुझे गवाह क्यों बनावेंगे ?

नरेन्द्र—नहीं तो साबित कैसे होगा ? यह भी तो अदालतमें साबित करना चाहिए कि घर सचमुच ही मेरा है।

विजया—और किसी अदालतकी जरूरत नहीं, बापूजीका आदेश ही मेरे लिए अदालत है। वह मकान मैं आपको लौटा दूँगी।

नरेन्द्र—(हँसीकी मुद्रामें) जान पड़ता है, चिट्ठीको आँखोंसे देखे विना ही मकान वापस कर देंगी !

विजया—नहीं। चिट्ठी मैं देखना चाहती हूँ। किन्तु यही बात अगर उसमें लिखी हो तो बापूजीके हुक्मको मैं किसी तरह अमान्य नहीं करूँगी।

नरेन्द्र—उनका मंशा अन्त तक यही बना रहा, इसका ही क्या प्रमाण है ?

विजया—यह मंशा बादको नहीं रहा, इसका भी तो प्रमाण चाहिए—वह कहाँ है ?

नरेन्द्र—लेकिन अगर मैं न लूँ ! अगर दावा न करूँ ?

विजया—यह आपकी इच्छा। किन्तु ऐसी हालतमें आपकी बुआके लड़के भी तो हैं। मुझे विश्वास है कि अनुरोध करने पर वे दावा करनेको तैयार हो जायँगे।

नरेन्द्र—(हँसकर) उन लोगोंके बारेमें यह विश्वास मुझे भी है। यहाँ तक कि हलफ लेकर कहनेको भी तैयार हूँ। (विजयाने इस हँसीमें साथ नहीं दिया, चुप रही) अर्थात् मैं लूँ या न लूँ, आप देंगी ही।

विजया—अर्थात् बापूजीकी दी हुई चीजको मैं हजम नहीं कर जाऊँगी—यही मेरा पण है।

नरेन्द्र—(शान्तभावसे) वह घर जब आपने एक सत्कार्यके लिए दे डाला है, तब मेरे न लेनेपर भी आपको हड़प जानेका अधर्म नहीं होगा। इसके सिवा उसे लौटाकर ही मैं क्या करूँगा, आप बताइए? कोई आत्मीय स्वजन मेरे हैं नही जो उसमें आकर रहेंगे। बाहर कहीं-न-कहीं जाकर काम किये विना मेरा गुजर नहीं होगा। इससे घरकी जो व्यवस्था हुई है वही तो सबसे अच्छी है। और भी एक बात है। वह यह कि विलास बाबूको आप इसके लिए किसी तरह राजी न कर पावेंगी।

विजया—अपनी चीजके लिए किसी दूसरेको राजी करनेकी चेष्टा बैसे कामके लिए मेरे पास फालतू समय नहीं है। लेकिन आप तो और एक काम कर सकते हैं। घरकी जब आपको जरूरत नहीं है, तब उसका उचित मूल्य मुझसे ले लीजिए। फिर आपको नौकरी भी न करनी होगी और अपना काम भी आप मजेमें कर सकेंगे। आप राजी हो जाइए नरेन बाबू।

[इस विनयपूर्ण कण्ठस्वरने नरेन्द्रको मुग्ध किया, चञ्चल भी किया।]

नरेन्द्र—आपकी बातें सुनकर राजी होनेको ही जी चाहता है; लेकिन यह होनेका नहीं। क्या जाने क्यों, मुझे बहुत बार यह जान पड़ा है कि बापूजीके ऋणके बदलेमें यह घर लेकर आप मनमें सुखी नहीं हो सकी हैं; इसीसे कोई-न-कोई बहाना निकालकर आप वह मुझे लौटा देना चाहती हैं। आपकी यह दया मैं हमेशा याद रखूँगा। लेकिन जो मुझे मिलनी न चाहिए, वह चीज गरीब होने के कारण भीखकी तरह कैसे ले सकता हूँ?

विजया—आप जानते हैं, इस बातसे मुझे कितना कष्ट होता है?

नरेन्द्र—मनुष्यकी बातसे मनुष्य कष्ट पाता है, यह क्या कभी हो सकता है ? कोई इसपर विश्वास करेगा ?

विजया—देखिए, आप खोंचा देनेकी चेष्टा न कीजिएगा। आप कष्ट पावें, ऐसी बात तो मैंने किसी दिन नहीं कही।

नरेन्द्र—लेकिन अभी जो कहा था कि मैं माइक्रोस्कोप बेंचकर आपको ठग ले गया हूँ ! कानोंको बहुत भला लगनेवाला मधुर वाक्य है यह—क्यों ?

विजया—(हँसी आ जाती है) लेकिन यह तो सच है।

नरेन्द्र—जी हाँ, सच तो है ही !

विजया—आप गरीब हों या बड़े आदमी, मुझे इससे क्या ? मैं तो केवल बापूजीकी आज्ञाका पालन करनेके लिए ही वह घर आपको लौटा देना चाहती हूँ।

नरेन्द्र—इसमें भी थोड़ा-सा मिथ्या रह गया। खैर उसे जाने दें। खूब बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाएँ तो कर डालीं, लेकिन पिताके हुक्मके माफिक देने लगें तो कितनी चीजें देनी होंगी, यह जानती हैं ? अकेला वह घर ही तो नहीं है।

विजया—अच्छा, अपनी सब सम्पत्ति लौटा लीजिए।

नरेन्द्र—(हँसकर सिर हिलाते हुए) बड़े ऊँचे गलेसे दावा करनेको मुझसे कह रही हैं, यहाँ तक कि अगर मैं न लूँ तो मेरी बुआके लड़कोंसे दावा करनेके लिए कहनेकी धमकी तक दे रही हैं; लेकिन उनके आदेशके अनुसार मेरा दावा कहाँ तक पहुँच सकता है, यह भी मालूम है ? खाली वह घर और कुछ बीघे जमीन ही नहीं, उससे कहीं ज्यादा—बहुत अधिक देना पड़ेगा।

विजया—बापूजीने और क्या क्या आपको दिया है ?

नरेन्द्र—उनकी वह चिट्ठी भी मेरे पास है। उसमें उन्होंने केवल उतना ही दहेज देकर मुझे बिदा नहीं किया है। यहाँपर जो कुछ आप देख रही हैं वह सब उसीके अन्तर्गत है। मैं केवल उसी घरपर दावा कर सकता हूँ, ऐसी बात नहीं है। यह मकान, यह घर, यह सब टेबिल-कुर्सी-आईना-दीवालगीरी-खाट-पलँग, घरके दास-दासी, अमला-कर्मचारी, मय उनके मालिक तक पर दावा कर सकता हूँ ! यह क्या आप जानती हैं ? बापूजीका हुकुम, बापूजीका हुकुम तो कह रही हैं—देंगी यह सब ? (विजया पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह

चुपचाप सिर झुकाये बैठी रहती है) क्यों, क्या जान पड़ता है ? दे सकेंगी सब ? बल्कि न हो, एक बार एकान्तमें विलास बाबूसे इस बारेमें सलाह कीजिएगा।—हाः हाः हाः हाः —(विजयाके सिर उठाते ही उसके उतरे हुए पीले चेहेरेपर नजर पड़ते ही नरेन्द्रका अट्टहास थम जाता है।)

नरेन्द्र—(भयके साथ) आप पागल हो गई हैं क्या ? मैं क्या सचमुच ही इन सब चीजोंपर दावा करनेवाला हूँ ? या दावा करते ही पा जाऊँगा ? तब तो मुझे ही पकड़ ले जाकर पागलखानेमें बंद कर दिया जायगा।

विजया—(गंभीर मुखसे) कहाँ हैं, देखूँ बापूजीकी चिट्ठियाँ !

नरेन्द्र—क्या होगा देखकर ?

विजया—ना, दीजिए, मैं देखूँगी।

नरेन्द्र—चिट्ठियोंका बंडल उसी दिनसे मेरे इस कोटकी जेबमें पड़ा है। यह लीजिए। लेकिन हथिया न लेना—पढ़कर लौटा देना।

[जेबसे चिट्ठियोंका बंडल निकालकर नरेन्द्र विजयाके सामने डाल देता है। विजया फुर्तीके साथ बंधन खोलकर एकके बाद एक चिट्ठीको उलटते उलटते दो चिट्ठियाँ उसमेंसे निकाल लेती है।]

विजया—यह तो बापूजीके हाथकी लिखावट है !—बापूजी ! बापूजी !

[दोनों चिट्ठियाँ माथेसे लगाकर स्तब्ध होकर बैठ रहती है। नरेन्द्र और चिट्ठियाँ समेटकर चुपचाप चला जाता है।]

तृतीय दृश्य

स्थान—विजयाके घरसे लगी हुई बगियाका एक हिस्सा

[घरका कुछ कुछ हिस्सा वृक्षोंकी सन्धियोंसे दिखाई देता है। परेश धोतीके पल्लेमें लैया-चबेना लेकर मौजसे चाबता हुआ जा रहा है। पीछेसे झपटते हुए रासबिहारी बाबू प्रवेश करते हैं।]

रास०—ए हरामजादे छोकरे ! खड़ा रह—खड़ा रह !

परेश—(ठिठककर खड़ा हो जाता है) जी ?

रास०—जी ! हरामजादे सुअर ! तू उस नरेनको घरमें क्यों बुला लाया था ?

परेश—माजीने कहा कि—

रास०—माजीने कहा ! कितनी रातको वह बदमाश घरसे गया—बता ?

परेश—मुझे नहीं मालूम बड़े बाबू ।

रास०—मालूम नहीं ? हरामजादे, बता, तेरी माजीने नरेनसे क्या क्या बातें कीं ।

परेश—मैं तो यहाँ रहा नहीं बड़े बाबू ! माजीने कहा—यह ले परेश एक रुपया, इससे डोर-चर्खी और पतंग जाकर खरीद ला । मैं दौड़कर चला गया ।

रास०—अब भी सच सच सब कह दे, नहीं तो पियादेसे कोड़े लगवाकर तेरी पीठका चमड़ा उधेड़ दूँगा ।

परेश—(रुआसा होकर) सच कहता हूँ बड़े बाबू, मुझे नहीं मालूम । नये दरबानने तुमसे झूठ कहा है । तुम बल्कि मेरी मासे जाकर पूछ लो ।

रास०—तेरी मा ? वही साली तो सारी बुराईकी जड़ है । तुझे भी निकाल दूँगा और उसे भी प्यादेके हाथसे गर्दनिया दिलाकर धक्के मारकर बाहर कर दूँगा । और वह जो साला कालीपद है, उसे भी निकालकर तब और काम करूँगा ।

परेश—मैं कुछ नहीं जानता बड़े बाबू ।

रास०—खबरदार ! ये सब बातें किसीसे न कहना । अगर मैंने सुना कि तूने अपनी माजीसे एक भी बात कही है तो याद रख, दोनों हाथ पीठकी तरफ बँधवाकर दरबानसे जलबिच्छू लगवाऊँगा * । खबरदार, कहे देता हूँ, एक भी बात किसीसे न कहना । जा—

[रासबिहारी और दरबान चले जाते हैं । दूसरी ओरसे विजया प्रवेश करती है और इशारेसे परेशको अपने पास बुलाती है ।]

विजया—हाँ रे परेश, बड़े बाबू तुझे लाठी क्यों दिखा रहे थे ? तूने क्या किया है ?

* मूलमें 'जल-बिछूटी' शब्द है । बिछूटी एक पौधा होता है जिसकी पत्तियाँ शरीरमें लगनेसे जलन पैदा कर देती हैं । बिछूटीका हिन्दी प्रतिशब्द अज्ञात है ।—अनुवादक ।

परेश—उन्होंने कहनेको मना कर दिया है माजी। कहते थे—खबरदार, कहे देता हूँ, अगर एक भी बात तूने अपनी माजीसे कही हरामजादे सुअर, तो तुझे सिपाहीसे बँधवाकर जलबिच्छू लगवाऊँगा।

[कहते कहते रो देता है। विजया स्नेहपूर्वक
उसकी पीठपर हाथ फेरती है।]

विजया—तुझे कोई डर नहीं है परेश। तू मेरे पास रहना। किसकी मजाल है जो तेरे हाथ लगावे।

परेश—(आँखें पोंछकर) बड़े बाबू कहते हैं—हरामजादे सुअर, नरेनको तू क्यों बुला लाया था, बता ? वह साला कितनी राततक घरमें रहा—कितनी रात गये गया ?—बोल।—अच्छा माजी, तुमने डाक्टर बाबूसे क्या क्या कहा, मैं क्या जानूँ ? तुमने रुपया दिया और वैसे ही मैं डोर-चर्खी-पतंग खरीदने चला गया दौड़ता हुआ—है न ठीक ?

विजया—हाँ, चला तो गया था।

परेश—फिर ? ये नये दरबानजी क्यों कहते हैं कि मैं सब जानता हूँ। बड़े बाबू कहते हैं कि तुझे और तेरी माको धक्के मारकर निकलवा दूँगा। और इस कालीपदको—इसे भी निकाल बाहर करूँगा।

विजया—तू जा परेश। डर नहीं। बड़े बाबू बुला भेजें तो जाना नहीं।

परेश—अच्छा माजी, मैं कभी नहीं जाऊँगा। दरबान बुलाने आवेगा तो मैं भाग जाऊँगा—क्यों न ?

विजया—हाँ, तू भागकर मेरे पास आ जाना। (परेश जाता है)

[रासबिहारीका प्रवेश।]

रास०—तुम यहाँ हो बेटी ? सवेरे ही निकल पड़ीं ? मैंने घरके भीतर सब जगह ढूँढ़कर देखा, विजया रानीका कहीं पता नहीं।

विजया—आप आज इतने सवेरे कैसे आ गये ?

रास०—सिरपर तरह तरहके अनेक कामोंका बोझा ठहरा बेटी। कल एक दुश्चिन्ताके मारे अच्छी तरह सो ही नहीं सका। मगर तुम्हारी आँखें भी तो लाल हो रही हैं। जान पड़ता है, तुम्हें भी अच्छी तरह नींद नहीं आई ?

विजया—नींद तो अच्छी ही आई।

रास०—फिर ? जान पड़ता है, ठंड खा गई हो ?

विजया—जी नहीं। ठीक ही हूँ।

रास०—तुम भले ही कहो, लेकिन मैं कैसे मान लूँगा ? कुछ न कुछ निश्चय ही हुआ है। सावधान रहना अच्छा है, आज देखो, नहाना-धोना नहीं।—हाँ, जरा एक बार ऊपर चलना पड़ेगा। तुम्हारे सोनेके कमरेमें वह जो लोहेकी तिजोरी है, उसमें सब जमीन-जायदादकी लिखा-पढ़ीके कागज-पत्र बंद हैं। उन्हें एक बार अच्छी तरह पढ़कर देखना होगा। सुना है, चौधरी बाबूकी तरफसे घोषपाड़ाकी सीमाको लेकर एक मुकदमा दायर होनेवाला है।

विजया—वे लोग मुकदमा लड़ेंगे, यह आपसे किसने कहा ?

रास०—(जरा हँसकर) किसीने कहा नहीं बेटी, मुझे हवामें उड़कर खबर मिल जाती है। ऐसा न होता, तो क्या इतनी बड़ी जमींदारीका काम मैं इतने दिन चला पाता।

विजया—कितनी जमीनका दावा वे लोग कर रहे हैं ?

रास०—जमीन कुछ न होगी तो दो बीघेके लगभग होगी।

विजया—बस, इतनी-सी ? तो वे ही ले लें। इतनेके लिए मुकदमा लड़नेकी जरूरत नहीं है।

रास०—(क्षोभके साथ) तुम जैसी लड़कीके मुँहसे ऐसी बात सुननेकी आशा मैंने नहीं की थी बेटी। आज विना बाधाके अगर दो बीघा छोड़ दूँ, तो कल फिर दो सौ बीघेसे हाथ न धोने पड़ेंगे, यह किसने कहा !

विजया—सचमुच तो कुछ ऐसा हो नहीं रहा है। मैं कहती हूँ कि मामूली कारणसे मामला-मुकदमा लड़नेकी कोई जरूरत नहीं है।

रास०—(बारंबार सिर हिलाते हुए) ना, ना, यह किसी तरह नहीं हो सकता। तुम्हारे बापू जब मेरे ऊपर सब कुछ छोड़ गये हैं तब जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तबतक विना आपत्तिके दो बीघा तो बहुत हैं, दो अंगुल जमीन छोड़ देनेमें भी घोर अधर्म होगा। इसके सिवा और भी अनेक कारण हैं, जिससे पुराने कागजात अच्छी तरह एक बार देखनेकी जरूरत है। जरा कष्ट करके ऊपर चलो बेटी,—देर होनेसे नुकसान होगा।

विजया—क्या नुकसान होगा ?

रास०—बहुत-सी बाते हैं। जबानी उनकी क्या कैफियत दूँ, क्या बताऊँ !

(मुनीमका प्रवेश)

मुनीम—बाहरकी बैठकसे बही-खाते उठा ले जाऊँ माजी ?

विजया—(लज्जित होकर) कुछ भी नहीं देख पाई मुनीमजी। आज रहने दीजिए, कल सवेरे ही मैं निश्चय भेज दूँगी।

मुनीम—जो आज्ञा।

(जाते हुए मुनीमको विजयाने पुकारा।)

विजया—सुनिए मुनीमजी। कचहरीका वह नया दरबान कबसे बहाल हुआ है ?

मुनीम—लगभग तीन महीने हुए होंगे।

विजया—उसकी अब जरूरत नहीं है। एक महीनेकी तनख्वाह अधिक देकर आज ही उसे जवाब दे दीजिए। (जरा रुककर) ना ना, किसी कसूरके कारण नहीं। वह आदमी मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता, इस लिए।

रास०—विना कसूरके किसीकी जीविका छुड़ाना क्या अच्छा है बेटी ?

मुनीम—तो फिर उसे क्या—

विजया—मेरा हुक्म तो आपने सुन लिया मुनीमजी ! आज ही बिदा कर दीजिए।

रास०—(अपनेको सँभालकर) अब जरा कष्ट करके चलो बेटी। पुराने कागजात एक बार अच्छी तरह पढ़ना बहुत ही जरूरी है।

विजया—क्यों ?

रास०—कहा तो, कारण हैं। फिर भी बार-बार एक ही बात दोहरानेके लिए मेरे पास फालतू समय नहीं है विजया।

विजया—कारण हैं, यह तो आपने कहा; लेकिन कारण एक भी नहीं दिखाया।

रास०—कारण न दिखानेसे तुम नहीं जाओगी ? (जरा रुककर) इसके माने यह कि तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं है ? (विजया चुप रहती है।)

[रासबिहारी अब अपनेको सँभाल नहीं सके। धरतीपर लाठी ठोंककर बोले—]

रास०—किस लिए तुम मेरा इतना बड़ा अपमान करनेका साहस करती हो? किस लिए तुम मुझपर अविश्वास करती हो? जरा सुनूँ।

विजया—(शान्त स्वरमें) मुझपर भी तो आप विश्वास नहीं करते। मेरे पैसेसे मेरे ही ऊपर जासूस तैनात करनेसे मनका भाव क्या होगा, यह क्या आप समझ नहीं पाते? इसके अलावा अपनी सम्पत्तिके असली आगजात हथियानेका मतलब अगर मैं कुछ और समझूँ या सन्देह करूँ, तो क्या यह अस्वाभाविक होगा? या यह आपका अपमान करना है?

[रासविहारी सन्नाटेमें आ गये। एकाएक कुछ बोल न सके। उनकी इतनी बड़ी पक्की चाल एक छोकरी पकड़ लेगी, यह संशय उनके पक्के दिमागमें आया ही न था। और यह तो वह सपनेमें भी नहीं सोच सकते थे कि विजया निःसंकोच होकर उनके मुँहपर यह बात कह देगी। कुछ देर तक वह किंकर्तव्य-विमूढ़की तरह स्तब्ध बैठे रहे। फिर इस प्रकृतिके लोगोंका जो अन्तिम अस्त्र होता है, वही तरकससे निकालकर प्रयोगमें लाये।]

रास०—बनमालीकी इज्जत बचानेके लिए ही यह काम करना पड़ा! मित्रका कर्त्तव्य समझ कर ही करना पड़ा! एक ऐसे बदनसीबको, जिससे जान है न पहचान, रास्तेसे पकड़ बुलाकर, सोनेके कमरेमें आधी-आधी रात तक हँसी-ठट्ठा करनेका मतलब क्या मैं समझ नहीं पाता? इससे तुम्हें लज्जा अवश्य नहीं मालूम होती, लेकिन हम लोगोंको तो घर-बाहर कहीं मुँह दिखाना कठिन हो रहा है। समाजमें किसीके सामने सिर उठानेका उपाय नहीं रहा। (क्षणभर कनखियोंसे अपने इस ब्रह्मास्त्रका प्रभाव विजयापर कैसा हुआ, यह देखकर) मैं पूछता हूँ, ये बातें क्या अच्छी हैं? या रोकनेकी चेष्टा करना मेरा काम नहीं है?

[विजया चुप रहती है।]

रास०—(जमीनपर लाठी ठोंककर) ना, चुप रहनेसे काम नहीं चलेगा। ये सब संगीन बातें हैं। तुम्हें जवाब देना होगा।

विजया—बात चाहे जितनी संगीन हो, झूठी बातका मैं क्या उत्तर दे सकती हूँ!

रास०—इसे क्या तुम झूठ कहकर उड़ा देना चाहती हो?

विजया—मैं उड़ा देना कुछ नहीं चाहती काका बाबू। सिर्फ यह कहना चाहती हूँ कि यह सरासर झूठ है। साथ ही साथ यह भी आपको बताना चाहती हूँ कि सबसे बढ़कर आप ही जानते हैं कि यह झूठ है।

रास०—मैं खुद जानता हूँ कि यह झूठ है?

विजया—जी हाँ, जानते हैं।—लेकिन आप गुरुजन हैं। आपसे इसपर बहस या वाद-विवाद करनेको जी नहीं चाहता। पुराने कागजात देखना अभी रहने दीजिए, मामले-मुकदमेकी जरूरत समझूँगी तो आपको बुला भेजूँगी।

[विजया चल देती है। रासबिहारी सन्नाटेमें बुत बने खड़े रहते हैं।]

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—विजयाके घरसे मिले हुए बागका दूसरा छोर।

[थोड़ी दूर पर सरस्वती नदी कुछ कुछ दिखाई पड़ रही है।
विजया और कन्हाईसिंह। दयाल बाबूका प्रवेश।]

दयाल—तुम्हींको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ बेटी। सुना, इसी तरफ आई हो। सोचा, घर जानेके पहले इधर देखता चलूँ, शायद भेंट हो जाय।

विजया—क्यों दयाल बाबू?

दयाल—आज तीज है; बारह दिनके बाद ही पूर्णिमा होगी। अब और कै दिन रह गये हैं बेटी, तुम्हीं कहो? विवाहका सब उद्योग, सब तैयारी इन्ही दिनोंमें पूरी कर लेनी होगी। अथ च रासविहारी सब जिम्मेदारी मेरे ऊपर डालकर निश्चिन्त हो गये हैं।

विजया—आपने जिम्मेदारी ली क्यों?

दयाल—यह तो आनन्दकी जिम्मेदारी है—लूँगा नहीं?

विजया—तो फिर शिकायत क्यों कर रहे हैं?

दयाल—शिकायत नहीं करता विजया। बात यह है कि मुखसे अवश्य यह कह रहा हूँ कि बड़े आनन्दकी जिम्मेदारी है, तो भी न जाने क्यों काम करनेका उत्साह अपनेमें नहीं पाता। मन इससे दूर ही रहना चाहता है।

विजया—क्यों दयाल बाबू?

दयाल—यह भी ठीक समझमें नहीं आता। जानता हूँ तुमने इस विवाहमें सम्मति दी है, अपने हाथसे हस्ताजर कर दिये हैं—आगामी पूर्णिमाको ब्याह होगा—तो भी जैसे इसमें रस नहीं पाता। उस दिन मेरे अपमानसे नाराज होकर तुमने विलास बाबूका जो तिरस्कार किया, वह सचमुच ही बुरा लगनेवाला था, सचमुच ही कठोर था। तो भी न जाने क्यों मुझे जान पड़ता है कि इसके भीतर केवल मेरा अपमान ही

नहीं है, और भी कुछ छिपा हुआ है, जो तुम्हें हरघड़ी काँटेकी तरह खटकता है। (कुछ देर मौन रहकर) यह बात जरूर है कि मैं तुम्हारे पास हमेशा नहीं आता, किन्तु मेरे आँखें तो हैं। तुम्हारे चेहरेपर वह निकटवर्ती मिलनकी स्वर्गीय दीप्ति कहाँ है—वह सूर्योदयकी लाली कहाँ देख पड़ती है ? बेटी, तुम नहीं जानतीं, कितने दिन एकान्तमें तुम्हारा थका और उतरा हुआ चेहरा मेरी आँखोंके आगे घूमा किया है—मेरे हृदयके भीतर रुलाई जैसे उमड़ पड़ी है-

विजया—नहीं दयाल बाबू, यह सब कुछ नहीं है।

दयाल—तो क्या यह मेरे मनकी भूल है बेटी ?

विजया—(मलिन हँसी हँसकर) भूल तो है ही।

दयाल—ऐसा ही हो बेटी,—मेरी भूल ही हो। जान पड़ता है, इस समय तुम्हें अपने पिताजीकी याद आ रही है, उनके लिए मन न जाने कैसा कर रहा है—यही बात है न विजया ?

[विजया सिर हिलाकर उनके कथनका समर्थन करती है।]

दयाल—(लंबी साँस छोड़कर) इस शुभ दिनमें अगर वह जीवित होते !

विजया—किस लिए मुझे खोज रहे थे, यह तो आपने बताया नहीं दयाल बाबू ?

दयाल—अरे हाँ, वह तो बिल्कुल भूल ही गया। विवाहके निमन्त्रणपत्र छपाने होंगे, तुम्हारे बन्धु-बान्धवोंको आदरके साथ बुलाना होगा, उन्हें यहाँ लानेकी व्यवस्था करनी होगी—इसीसे अगर उनके नाम और पते मालूम हो जाते—

विजया—जान पड़ता है, निमंत्रणपत्र मेरे ही नामसे छपाये जायँगे ?

दयाल—नहीं बेटी, तुम्हारे नामसे क्यों छपेंगे ? रासबिहारी बाबू वर और कन्या दोनोंके अभिभावक हैं, इसलिए उन्हींके नामसे निमंत्रणपत्र छपाना तय हुआ है।

विजया—तय क्या उन्होंने ही किया है ?

दयाल—हाँ, उन्होंने ही तो किया है।

विजया—तो फिर यह भी वही तय करें। मेरा बन्धु-बान्धव कोई नहीं हैं।

दयाल—(विस्मयके साथ) यह तुम्हारा कैसा जवाब है बेटी ? यह कहनेसे हम लोग काम करनेका जोर और उत्साह कहाँसे पावेंगे ?

विजया—अच्छा दयाल बाबू, उस दिन नरेन्द्र बाबूको क्या आपने कुछ पुरानी चिट्ठियोंका एक बंडल दिया था ?

दयाल—दिया तो था बेटी। उस दिन एकाएक मैंने देखा, एक टूटी दराजके भीतर एक चिट्ठियोंका बंडल पड़ा है। उनके पिताका नाम देखकर मैंने उन्हींके हाथ दे दिया। क्यों, क्या मैंने अच्छा नहीं किया ?

विजया—नहीं दयाल बाबू, इसे बुरा कौन कह सकता है ? उनके पिताकी चिट्ठियाँ उन्हें दे दीं, यह तो ठीक ही किया। उन चिट्ठियोंको क्या आपने पढ़ा था ?

दयाल—(विस्मयसे) मैंने ? ना ना, पराई चिट्ठियाँ भला मैं पढ़ सकता हूँ ?

विजया—उन्होंने उन चिट्ठियोंके सम्बन्धमें क्या आपसे कुछ नहीं कहा ?

दयाल—एक शब्द भी नहीं। लेकिन अगर कुछ जाननेकी जरूरत हो, तो मैं उनसे पूछकर कल ही तुमको बता सकता हूँ।

विजया—कल ही कैसे बतावेंगे ? वह तो अब इस तरफ आते नहीं।

दयाल—आते क्यों नहीं। मेरे घर रोज ही आते हैं।

विजया—हर रोज ? आपकी स्त्रीकी बीमारी क्या फिर बढ़ गई है ? कहाँ, यह बात तो आपने एक दिन भी नहीं कही ?

दयाल—(हँसकर) नहीं बेटी, अब तो वह खूब चंगी है। इसीसे नहीं कहा। नरेन्द्रकी चिकित्सा और भगवान्‌की दयाका यह फल है। (हाथ जोड़कर भगवानको प्रणाम करते हैं।)

विजया—वह अच्छी हैं, तो भी उन्हें रोज क्यों आना पड़ता है ?

दयाल—आवश्यक न होने पर भी जन्मभूमिकी ममता क्या सहजमें दूर होती है ? इसके सिवा उन्हें आजकल कोई काम-काज नहीं है। वहाँ कोई विशेष बन्धु-बांधव या इष्टमित्र नहीं हैं। इसीसे सन्ध्याका समय यहीं बिता जाते हैं। मेरी स्त्री तो उन्हें अपने लड़केके ही समान स्नेह करती है। स्नेह और प्यार करने लायक ही लड़का है। ऐसे निर्मल, स्वभावसे ऐसे भले आदमी मैंने कम ही देखे हैं बेटी। नलिनीकी इच्छा है कि वह बी० ए० पास करके

डाक्टरी पढ़े। इस बारेमें वह नलिनीको कितना उत्साहित करते हैं, कितनी सहायता देते हैं, इसकी कोई हद नहीं। उनकी सहायतासे नलिनीने इतने ही दिनोंमें अनेक पुस्तकें पढ़कर समाप्त कर दी हैं। लिखने-पढ़नेका दोनोंको बड़ा चाव है।

विजया—ठीक है। लेकिन आप क्या और कुछ संदेह नहीं करते?

दयाल—काहेका सन्देह बेटी?

विजया—मुझे क्या जान पड़ता है, जानते हैं दयाल बाबू?

दयाल—क्या जान पड़ता है बेटी?

विजया—मुझे जान पड़ता है कि नलिनीके सम्बन्धमें उन्हें अपने मनका भाव स्पष्ट करके कह देना चाहिए।

दयाल—ओः—यह कहती हो? यह बात तो मेरे भी मनमें आई है बेटी, लेकिन उसका समय अभी बीत नहीं गया। बल्कि दोनों जनोंका परिचय और भी कुछ घनिष्ठ जब तक न हो ले, तब तक कुछ न कहना ही उचित है!

विजया—किन्तु नलिनीके लिए तो यह क्षतिका कारण हो सकता है। उन्हें अपना मन स्थिर करनेमें शायद समय लगेगा; किन्तु इस बीचमें नलिनीकी—

दयाल—सच बात है। लेकिन मैंने अपनी स्त्रीसे जहाँ तक सुना है, उससे—ना, ना, नरेनपर हमें बहुत विश्वास है। मैं तो यह सोच ही नहीं सकता कि नरेनके द्वारा किसीकी कोई क्षति हो सकती है या वह भूलकर भी किसीके साथ अन्याय कर सकते हैं। लेकिन यह क्या, बातों ही बातोंमें तुम घरसे बहुत दूर निकल आई हो। अच्छा जब इतनी दूर आ गई, तो चलो न बेटी, अपना यह घर भी एक बार देख आओ। तुम्हारे जानेसे नलिनी-की मामीको तो बेहद खुशी होगी।

विजया—चलिए। लेकिन लौटतेमें सन्ध्या हो जायगी!

दयाल—सन्ध्या हो जाने दो। मैं उसकी व्यवस्था करूँगा। इसके सिवा साथमें कन्हाईसिंह तो है ही।　　　　(सबका प्रस्थान।)

द्वितीय दृश्य

स्थान—दयाल बाबूके घरके नीचेका बरामदा।

नलिनी और नरेन्द्र

[टेबिलके दोनों ओर दोनों बैठे हैं। सामने खुली हुई पोथी, दावात, कलम आदि पढ़ने-लिखनेका सब सामान रखा है।]

नलिनी—सचमुच ही मिस रायके विवाहमें आप उपस्थित नहीं रहेंगे? कुछ ही दिन तो रह गये हैं। फिर रासबिहारीबाबूने आपसे अनुरोध भी किया है।

नरेन्द्र—उन्होंने अनुरोध अवश्य किया है, पर जिनका विवाह है, उन्होंने तो एक बार भी नहीं कहा।

नलिनी—वह कहतीं तो आप रहते?

नरेन्द्र—नहीं। मैं ठहर नहीं सकता—लाचार हूँ। मुझे जल्दीसे जल्दी नई नौकरीपर जाना होगा।

नलिनी—लेकिन मेरे विवाहमें? उसमें भी न रहेंगे?

नरेन्द्र—रहूँगा। निमन्त्रणपत्र भिजवाइगा। अगर असंभव न हुआ तो आपके विवाहमें अवश्य ही उपस्थित होऊँगा।

नलिनी—जबान देते हैं?

नरेन्द्र—हाँ, जबान देता हूँ। अगर विजया स्वय अनुरोध करतीं तो शायद इसी तरह उन्हें भी वचन देता। कामका हर्ज होने पर भी।

नलिनी—देखिए डाक्टर मुखर्जी, इस विवाहमें विजयाको सुख नहीं है, आनन्द नहीं है। इसमें मुझे घोरतर सन्देह है। इसी कारण उन्होंने आपसे अनुरोध नहीं किया।

नरेन्द्र—लेकिन उन्होंने आप ही तो सम्मति दी है?

नलिनी—सम्मति जबानसे दी है, शायद वाध्य होकर। लेकिन हृदयसे सम्मति कभी नहीं दी। मेरे मामा ऐसे सीधे-सादे आदमी हैं, जो सामनेके सिवा अगल-बगल जरा भी नहीं देख पाते, पर उनके मनमें भी संशय घरकर गया है कि विजया जिसे चाहती है वह आदमी यह विलास बाबू नहीं है। अभी कल ही मुझसे कह रहे थे कि नलिनी, ब्याहकी तैयारीका सारा भार मेरे ऊपर आ

पड़ा है; लेकिन मुझे अपने मनसे उत्साह नहीं मिलता। केवल यही भय होता है कि कोई गर्हित काम करने जा रहा हूँ। जितना ही विजयाको देखता हूँ, उतना ही जान पड़ता है कि वह दिन-दिन सूखती जा रही है, चेहरेपर स्याही दौड़ती जा रही है। मैं क्यों यहाँ आया? आखिरी दिनोंमें अगर पाप कमाऊँगा तो मरनेके बाद भगवानको जाकर क्या जवाब दूँगा?

नरेन्द्र—देखिए मिस दास, यह सब कुछ नहीं है। विजया अभी-अभी बीमारीसे उठी हैं—अभी तक पूर्ण रूपसे अच्छी नहीं हुई हैं।

नलिनी—इसीसे दिन दिन सूखती जाती हैं? खूब! डाक्टर मुखर्जी, मेरे मामा तो सामनेका देख पाते हैं, लेकिन आप वह भी नहीं देख पाते। आप उनसे भी अधिक अंधे हैं। उस दिनकी बात याद करके देखिए। प्रेम होने पर कोई भी लड़की विलास बाबूसे, चाहे जितना क्रोध होने पर भी, मालिक-नौकरके सम्बन्धकी बात किसी तरह नहीं कह सकती थी।

नरेन्द्र—बड़े आदमी रुपएके अहंकारमें सब कुछ कर सकते हैं मिस दास। उनकी जबानपर लगाम नहीं रहती।

नलिनी—यह कहना आपका भारी अन्याय है डाक्टर मुखर्जी। आपके भी पहलेसे मैं उन्हें जानती हूँ—हम एक ही कालिजमें पढ़ती थी। ऐश्वर्य है; लेकिन मैंने उनमें कभी ऐश्वर्यका गर्व नहीं पाया। उनमें कितनी दया है—वह कितना दान-पुण्य अनुष्ठान करती हैं, आप क्या भूल गये? अपरिचित होकर भी जब आपने जाकर कहा, तो उन्होंने तुरन्त पूर्णबाबूको 'पूजा' करनेकी अनुमति दे दी। विलास बाबू और रासबिहारी बाबू लाख कोशिश करके भी उसे बंद नहीं कर सके। भद्रता, सहानुभूति और न्याय-अन्यायका बोध विशेष सजग होनेपर ही ऐसा हो सकता है, जरा विचार करके तो देखिए। मेरे मामा तो गरीब हैं, लेकिन वे उनपर कितनी श्रद्धा रखती हैं! इसमें क्या अमीरीका घमंड जाहिर होता है डाक्टर मुखर्जी?

नरेन्द्र—(कुछ सोचकर) सो तो सच है। अगर मालूम हो गया कि किसीने भोजन नहीं किया तो उसे किसी तरह भूखा न जाने देंगी। चाहे जिस तरह हो, उसे अवश्य खिलावेंगी। और खिलाने-पिलानेमें आदर-यत्नकी बात तो कुछ पूछो ही नहीं!

नलिनी—फिर ? यह सब क्या सम्पत्तिके घमंडसे होता है ?

नरेन्द्र—और इस लड़कीकी पितृभक्ति कैसी अद्भुत और असीम है। यह मकान लेनेके बादसे उनके मनमें शान्ति नहीं थी, लेना पड़ा था केवल विलास बाबूकी ज़बर्दस्तीसे—

नलिनी—यह बात हम सभी जानते हैं डाक्टर मुखर्जी।

नरेन्द्र – हाँ, बहुत लोग जानते हैं।—उस दिन उनको जरा परेशानीमें डालनेके लिए ही वनमाली बाबूकी उस चिट्ठीका उल्लेख करके मैंने कहा था कि मेरे बाबूजीने चाहे जितना ऋण किया हो, किन्तु आपके बाबूजी यह घर मुझे ही यौतुकमें दे गये थे, तो भी आपने छीन लिया। सुनकर विजयाका चेहरा उतर गया। बोलीं—यह बात अगर सच है मैं आपको यह घर लौटा दूँगी। इसपर मैंने कहा—बात तो मैंने सच ही कही है, लेकिन यह घर वापस लेकर मैं खुद बाहर रहूँगा। घरमें घास-फूस उगकर जंगल हो जायगा, सियार और कुत्ते डेरा डालेंगे। इसकी अपेक्षा जो कुछ हुआ, वही अच्छा है। उन्होंने सिर हिलाकर कहा—यह न होगा—आपको लेना ही पड़ेगा। बाबूजीके आदेशकी उपेक्षा मैं प्राण जानेपर भी नहीं कर सकूँगी। घर न सही, घरके मुनासिब दाम जो हों, वह ले लीजिए। मैंने कहा—भिक्षा मैं नहीं ले सकूँगा। बोलीं—तो मैं आपके दूरके नातेके आत्मीयोंको बाँट दूँगी। बाबूजी जो दे गये हैं, वह मैं छीनूँगी नहीं— किसी तरह नहीं— यही मेरा प्रण है। यह सुनकर मेरे सिरपर दुष्टबुद्धि सवार हो गई। मैंने कहा – इस प्रणकी रक्षा करनेके लिए क्या क्या देना होगा, जानती हैं ? खाली यह घर ही नहीं—यह घर, यह जमींदारी, दास-दासी, अमला-कर्मचारी, खाट-पलँग-टेबिल-कुर्सी, मय उनके मालिक तकको मेरे हाथमें सौंप देना होगा। दीजिएगा यह सब ? दे सकेंगी ?

नलिनी—(विस्मयके साथ) वनमाली बाबूकी ऐसी कोई चिट्ठी है क्या ? कहाँ, हम लोगोंमेंसे तो किसीको आपने यह नहीं बताया।

नरेन्द्र—(हँसकर) यह तमाशेकी बात किससे कहूँ ? मैं क्या पागल हूँ ? लेकिन चिट्ठीकी बात जो पूछो तो सचमुच ही इस मजमूनकी वनमाली बाबूकी चिट्ठी है। (उँगलीसे दिखाकर) उस कोठेमें एक टूटी दराजके भीतर एक चिट्ठियोंका बंडल था। मेरे पिताजीका नाम देखकर दयाल बाबूने वह मुझे

दे दिया। मैंने पढ़ा तो देखा, उसमें यह मजेकी बात लिखी है। आप तो जानती हैं कि वनमाली बाबू मेरे पिताके सच्चे मित्र थे। उन्होंने ही मुझे पढ़ने-लिखनेके लिए विलायत भेजा था।

नलिनी—इसके बाद?

नरेन्द्र—विजयाने कहा कि देखें पिताजीकी चिट्ठी। मेरे जेबमें ही चिट्ठिया थीं। निकालकर सामने डाल दीं। बंडल खोलकर भूखे कंगालकी तरह खोजने लगीं वह चिट्ठी। एकाएक चिल्ला उठीं—यह मेरे पिताजीके हाथकी लिखावट है! इसके बाद दोनो चिट्ठियाँ माथेसे लगाकर पलक मारते ही एकदम पत्थर हो गईं।

नलिनी—इसके बाद?

नरेन्द्र—उनकी वह मूर्ति देखकर मैं डर गया। एकदम चुप और निश्चल हो गई थीं! एकाएक देखा, दबी रुलाईसे उनकी छातीकी पसलियाँ फूल फूल उठती हैं। फिर और बैठनेका साहस नहीं हुआ, चुपकेसे चला आया।

नलिनी—चुपकेसे चले आये! फिर उनके पास नहीं गये?

नरेन्द्र—ना, उधर गया ही नहीं।

नलिनी—उन्हें देखनेको आपका जी नहीं चाहता?

नरेन्द्र—(हँसकर) यह जानकर आपको क्या मिलेगा?

नलिनी—नहीं, यह न होगा। आपको बताना ही पड़ेगा।

नरेन्द्र—केवल आपहीसे मैं यह कह सकता हूँ। लेकिन वचन दीजिए कि कभी किसीसे नहीं कहिएगा।

नलिनी—वचन मैं नहीं दूँगी। तो भी आपका जी चाहता है कि नहीं?

नरेन्द्र—चाहता है—रातदिन हरघड़ी जी चाहता है।

नलिनी—(बाहर देखकर बड़े उल्लाससे)—यह लो!—आइए, आइए। नमस्कार। अच्छी हैं?

(विजया और दयालका प्रवेश।)

विजया—(नरेन्द्रकी ओर पीठ फेरकर नलिनीसे) नमस्कार। मैं अच्छी हूँ कि नहीं, यह पता लगाने तो आप एक दिन भी नहीं गईं?

नलिनी—रोज ही जानेको सोचती हूँ; मगर घरके कामोंमें—

विजया—घरका कामकाज शायद हम लोगोंके यहाँ नहीं है?

नलिनी—है क्यों नहीं। लेकिन मामीजीकी बीमारीसे—

विजया—बिल्कुल फुर्सत नहीं मिलती। क्यों न ?

नरेन्द्र—(सामने आकर हँसते हुए मुँहसे) और मैं जो यहाँ मौजूद हूँ, सो शायद पहचान ही नहीं पाईं ?

विजया—पहचान पानेसे ही क्या पहचानना जरूरी है ? (नलिनीसे) चलिए मिस दास, ऊपर चलकर मामीजीसे जरा मिल-बोल आऊँ। चलिए।

[नरेन्द्रके ऊपर दृष्टिपात भी न करके नलिनीको एक तरहसे ठेलकर ले जाती है।]

नलिनी—(जाते-जाते) डाक्टर मुखर्जी, चाय विना पिये आप कहीं भाग न जाइएगा। हमें लौटनेमें देर न होगी।

दयाल—भैया, तुम भी ऊपर चलो न। वहीं चाय पीना।

[नलिनी और विजया चली जाती हैं।]

नरेन्द्र—ऊपर जानेसे देर हो जायगी दयाल बाबू। फिर छः बजेकी गाड़ी पकड़ न पाऊँगा।

दयाल—तुम तो उस आठ बजेकी ट्रेनसे जाया करते हो—आज इतनी जल्दबाजी क्यों कर रहे हो ? न हो, चाय यहीं लानेके लिए कह दूँ।

नरेन्द्र—नहीं दयाल बाबू, आज चाय रहने दीजिए। (घड़ी देखकर) यह देखिए, पाँच बज गये हैं। अब मुझे ठहरनेका अवकाश नहीं है। मैं जाता हूँ। मामीजी दुःखित न हों।

दयाल—दुःख तो उसे होगा ही नरेन।

नरेन्द्र—ना, दुःख न करें। और एक दिन आकर मैं उन्हें समझा लूँगा।

(प्रस्थान)

[भीतर नलिनी और विजयाके हँसने-बोलनेका शब्द सुनाई देता है। इसके बाद ही वे दयाल बाबूकी स्त्रीके साथ प्रवेश करती हैं।]

दयालकी स्त्री—(दयालसे) नरेन्द्र कहाँ गया ? वह तो नहीं देख पड़ता !

दयाल—अभी अभी चला गया। बोला—काम है, आज छः बजेकी ट्रेनसे जाना बहुत जरूरी है।

दयालकी स्त्री—यह कैसी बात है! चाय नहीं पी, खाना नहीं खाया—ऐसा तो वह कभी नहीं करता!

[सभी चुप रहते हैं। विजया दूसरी तरफ आँखें फेरे खड़ी रहती है।]

दयालकी स्त्री—(पतिसे) तुमने जाने क्यों दिया? यह क्यों नहीं कहा कि इससे मुझे बड़ा दुःख होगा?

दयाल—मैंने कहा था; लेकिन फिर भी वह ठहर नहीं सका।

दयालकी स्त्री—तो निश्चय ही कोई जरूरी काम होगा। झूठ वह कभी नहीं बोलता। कैसा भला लड़का है बेटी। जैसा विद्वान्, वैसा ही बुद्धिमान्। मुझे तो उसने मरनेसे बचा लिया। रोज तीसरे पहर नलिनी और वह बैठे बैठे पढ़ते-लिखते हैं और मैं आड़से देखती हूँ। देखकर कैसा अच्छा लगता है, तुमसे क्या कहूँ। भगवान् उसका भला करें।

विजया—सन्ध्या हो गई, अब मैं जाऊँगी मामीजी।

दयालकी स्त्री—चाहे जितनी तबियत खराब हो, तुम्हारे ब्याहमें मैं अवश्य ही उपस्थित रहूँगी। नरेन्द्र कहता है कि मुझे बहुत चलना फिरना न चाहिए। सो वह चाहे जो कहे, मैं नहीं सुनूँगी। इन डाक्टरोंकी सभी बातोंको माना जाय तो जीना दूभर हो जाय।—आशीर्वाद करती हूँ, सुखी होओ, बड़ी उमर हो। विलास बाबूको मैंने आँखोंसे नहीं देखा, लेकिन इन (दयाल बाबू)के मुँहसे सुना है कि खासा लड़का है। (हँसकर) वर पसन्द तो है न बेटी, आप ही तुमने चुनाव किया है—

विजया—इसमें चुनाव करनेका क्या है मामीजी। स्त्रियोंके सम्बन्धमें सभी पुरुष एक-से हैं। कोई मुखकी या बातचीतकी भद्रतामें कुछ होशियार है और कोई नहीं है, इतना ही फर्क है। प्रयोजन होनेपर दो मीठी बातें कह देते हैं और काम निकल जाने पर उग्रमूर्त्ति धारण कर लेते हैं। इसमें भला या बुरा नहीं है मामीजी। हम लोगोंका दुःखका जीवन अन्त अन्त तक दुःखमें ही कटता है।

नलिनी—यह बात आपको न कहनी चाहिए मिस राय।

विजया—इस समय मैं बहस नहीं करूँगी, लेकिन अपना ब्याह होनेपर एक दिन याद कीजिएगा कि विजयाने सच ही कहा था। खैर, अब देर हो रही है, मैं चलती हूँ।—कन्हाईसिंह!—

नेपथ्यमें—मामी—

दयाल—(व्यस्त भावसे) अँधेरी रात है। एक लालटेन ला दूँ बेटी।

विजया—(हँसकर) अँधेरा कहाँ है, दयाल बाबू, बाहर देखिए, आकाशमें चाँदनी छाई हुई है। हम बेखटके जा सकेंगे, आप चिन्ता न कीजिए। अच्छा, नमस्कार। (प्रस्थान)

दयालकी स्त्री—(पतिसे) लड़कीने क्या कहा, कुछ सुना?

दयाल—क्या?

दयालकी स्त्री—तुम लोगोंके क्या कान नहीं हैं? जबसे आई, उसकी बात-चीतमें जैसे एक रुलाईका सुर था। जब हँसती थी तब भी। विजयाको पहले मैंने कभी नहीं देखा; लेकिन आज उसका मुँह देखकर जान पड़ा, जैसे उसे पकड़कर हाथ-पैर बाँधकर कोई बलि देनेको लिये जा रहा है। मैंने पूछा—वर पसंद तो आया बेटी? बोली—इसमें पसंद-नापसंदकी बात क्या है मामीजी, स्त्रियोंका दुःखका जीवन अंत तक दुःखमें ही बीतता है। यह क्या आनन्दका ब्याह है? देखो, कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। उसके मा नहीं है, बाप नहीं है—मुँह देखकर बड़ी ममता होती है। विना समझे-बूझे यह काम न कर बैठना।

दयाल—मैं क्या कर सकता हूँ, बताओ। रासविहारी बाबू ही मालिक हैं।

दयालकी स्त्री—याद रखो, उनके ऊपर भी और एक बड़ा मालिक है। तुम उसके मंदिरके आचार्य हो—उसके रुपएसे, उसके घर सुखसे खाते-पीते हो। उसका भला-बुरा, सुख-दुख देखना क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है? सब कुछ सोचे-समझे विना ही क्या यह काम कर बैठोगे?

दयाल—तो तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ?

दयालकी स्त्री—इस ब्याहमें तुम आचार्यका काम न करो। मैं कहती हूँ, करोगे तो एक दिन तुम्हें पछताना होगा।

दयाल—(चिन्तित मुखसे) लेकिन विजयाने तो स्वयं इस विवाहमें अपनी सम्मति दी है, रासबिहारी बाबूके सामने अपने हाथसे कागजपर दस्तखत किये हैं!

नलिनी—कर दे, इससे क्या होता है ? उसके हाथने दस्तखत किये हैं, किन्तु हृदयने नहीं किये। उसकी जीभने 'हाँ' की है, किन्तु उसके हृदयने सम्मति नहीं दी। वह मुख और हाथ ही क्या बड़ा हो जायगा मामाजी, और उसके हृदयकी वास्तविक असम्मति दब जायगी ?

दयाल—तुमने यह कैसे जाना नलिनी ?

नलिनी—मैं जानती हूँ, आज जाते समय नरेन बाबूका चेहरा देखकर भी क्या तुम समझ नहीं पाये ?

दयाल और दयालकी स्त्री—(एक साथ) नरेन ? हमारा नरेन ?

नलिनी—हाँ, वही।

दयाल—असंभव ! एकदम असंभव !

नलिनी—(हँसकर) असंभव नहीं है मामाजी, सत्य है।

दयाल—(जोर देकर) लेकिन विजयाने जो मुझसे स्वयं कहा—

नलिनी—क्या कहा ?

दयाल—कहा, तुमपर और नरेनपर जरा नजर रखनेके लिए। कहा, नरेनको तुम्हारे बारेमें अपने मनका भाव स्पष्ट करके जता देना चाहिए।

नलिनी—(लजाते हुए) छी छी, नरेन बाबू मेरे बड़े भाईके समान हैं मामाजी।

दयालकी स्त्री—कैसे आश्चर्यकी बात है ! तुम हमारे उस 'ज्योतिष' को क्या भूल गये ? उसके विलायतसे लौटनेमें तो अब कुछ देर नहीं है।

दयाल—ज्योतिष ? हमारा वही ज्योतिष ?

दयालकी स्त्री—हाँ हाँ, हमारा वही ज्योतिष। (हँसकर) इस अंधे आदमीके साथ मुझे सारा जीवन बिताना पड़ा !

दयाल—मैं अभी नरेन्द्रके डेरेपर जाऊँगा।

दयालकी स्त्री—इतनी रातको ? क्यों ?

दयाल—क्यों ? पूछती हो—क्यों ?—अपना कर्त्तव्य मैंने ठीक कर लिया है। उससे अब मुझे कोई डिगा नहीं सकेगा।

नलिनी—तुम शान्त मनुष्य हो मामाजी, किन्तु कर्त्तव्यसे कब कौन तुम्हें विचलित कर सका है ! लेकिन आज रातको नहीं—तुम कल सवेरे जाना।

दयाल—यही होगा बेटी। मैं सवेरेकी गाड़ीसे ही चला जाऊँगा।

नलिनी—मैं तुम्हारी चाय तैयार कर रखूँगी मामाजी। अच्छा, अब ऊपर चलो, तुम्हारे भोजनका समय हुआ।

दयाल—चलो। (सबका प्रस्थान।)

तृतीय दृश्य

स्थान—विजयाका घर, पुस्तकालय। विजया पत्र लिख रही है।

(परेशकी माका प्रवेश।)

परेशकी मा—रातको तुमने कुछ खाया नहीं, आज सवेरे-सवेरे कुछ खा लो न बिटिया रानी!

[विजया सिर उठाकर देखती है और फिर लिखने लगती है।]

परेशकी मा—खा-पीकर फिर लिखो। उठो—ए लो, डाक्टर बाबू आ रहे हैं!

[कहकर खिसक जाती है। परेश नरेन्द्रको पहुँचाकर चला जाता है। नरेन्द्र भीतर घुसते ही एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। उसका मुँह सूखा हुआ है, बाल अस्तव्यस्त हैं। मुख और आँखोंमें उद्वेग और अशान्तिके चिह्न मौजूद हैं।]

नरेन्द्र—कल मुझे पहचान क्यों नहीं पाईं, बताइए तो! आजसे हमेशाके लिए अपरिचित हो गया, यही शायद इशारा था?

विजया—आपकी आँखें और चेहरा कैसा हो रहा है? तबियत तो खराब नहीं है? इतने सवेरे कैसे आ गये? जान पड़ता है, कुछ खाया-पिया भी नहीं?

नरेन्द्र—स्टेशनपर चाय पी आया हूँ। तड़के उठते ही चल दिया था। कल खाया नहीं गया, नींद नहीं आई—रातभर केवल एक ही बात मनको मथती रही कि शायद दर्वाजा बन्द हो गया, अब मुलाकात न होगी।

विजया—कल विना खाये ही उस घरसे भाग गये। डेरेपर लौट कर भी कुछ नहीं खाया और तड़के उठकर नहाना-खाना कुछ नहीं, इतनी राह पैदल चले आये! शरीर जिससे टूट जाय, यही चेष्टा हो रही है शायद? मुझे क्या आप तनिक भी शान्तिसे न रहने देंगे?

नरेन्द्र—आप भी अद्भुत मनुष्य हैं। पराये घरमें पहचानना नहीं चाहतीं, और अपने घरमें इतना अधिक पहचानती हैं कि एक आश्चर्य-सा लगता है। कलका काण्ड देखकर मैंने सोचा कि खबर देनेसे आप भेंट ही नहीं करेंगी, इसीसे विना खबर दिये परेशके साथ आकर आपको अचानक आ पकड़ा है। कुछ थकान अवश्य हुई है, यह मैं मानता हूँ; किन्तु आकर ठगाया नहीं। (विजया चुपचाप नरेन्द्रकी ओर ताकती रहती है) कल यहाँसे लौटकर देखा, दक्षिण-आफ्रिकासे केबल (समुद्रीतार) आया है कि मुझे नौकरी मिल गई है। चार दिन बाद कराचीसे दक्षिण आफ्रिकाको जहाज जायगा। आज अगर न आ पाता तो फिर कभी भेंट ही न होती। आपके शुभ विवाहका निमंत्रणपत्र भी मिला है। यह शुभकार्य देख जानेका सौभाग्य न होगा। किन्तु अपना आशीर्वाद, अपनी अकृत्रिम शुभ-कामना आपको पहले ही जनाये जाता हूँ। मेरी बातपर आप अविश्वास न करें, यही आपसे प्रार्थना है।

विजया—यहाँकी नौकरी छोड़कर दक्षिण आफ्रिका चले जाइएगा ? लेकिन क्यों ?

नरेन्द्र—(हँसकर) वहाँ यहाँसे अधिक वेतन मिलेगा, इसलिए। फिर मेरे लिए जैसा कलकत्ता वैसा ही दक्षिण आफ्रिका।

विजया—और क्या ! सो तो ठीक है; लेकिन क्या नलिनी राजी हो गई हैं ? अगर राजी भी हों तो इतनी जल्दी कैसे जाइएगा, मेरी समझमें नहीं आता। उनसे सब खुलासा करके कहा है क्या ? और इतनी दूर जानेके लिए ही वह कैसे राजी हो गई ?

नरेन्द्र—ठहरिए, ठहरिए। अभी तक किसीसे सब बात खोलकर जरूर नहीं कही गई, लेकिन—

विजया—लेकिन क्या ? ना, यह किसी तरह न होने पावेगा। आप लोग हम लोगोंको क्या बाक्स बिछौना समझते हैं कि हमारी इच्छा हो या न हो, रस्सीसे बाँधकर अपने पीछे गाड़ीमें रख लीजिएगा और हमें आपके साथ जाना ही होगा ? यह किसी तरह न होगा। उनके राजी हुए विना आप किसी तरह इतनी दूर न जा सकेंगे।

नरेन्द्र—(कुछ देर तक विस्मयविमूढ़की तरह स्तब्ध रहकर) मामला क्या

है, मुझे समझाकर कहिए न? परसों या कब इस नई नौकरीकी बात दयाल बाबूसे कहते ही वह भी चौंक उठे थे और इसी तरहकी कोई आपत्ति उठाई थी, जिसे मैं समझ ही न पाया। इतने आदमियोंमेंसे केवल नलिनीके मतामतके ऊपर ही भला मेरा जाना या न जाना क्यों निर्भर करता है और वही क्यों बाधा देंगी—यह सब क्रमशः पहेली बनता जा रहा है। बात क्या है, खोलकर तो कहिए!

विजया—(क्षणभर बाद धीरे धीरे) उनसे आपने क्या विवाहका प्रस्ताव नहीं किया?

नरेन्द्र—मैंने? ना, किसी दिन नहीं।

विजया—न किया हो, तो भी क्या करना न चाहिए था? आपके मनका भाव तो किसीसे छिपा नहीं है।

नरेन्द्र—(कुछ देर स्तब्ध रहकर) मैं यही सोच रहा हूँ कि यह अनिष्ट किसके द्वारा घटित हुआ। स्वय उनके द्वारा तो कभी हुआ नहीं। हम दोनों जने जानते हैं कि यह असंभव है।

विजया—असंभव क्यों है?

नरेन्द्र—इसे छोड़ो।—एक कारण तो यह है कि मैं हिन्दू हूँ और हम दोनोंकी जाति भी एक नहीं है।

विजया—जाति आप मानते हैं?

नरेन्द्र—मानता हूँ।

विजया—आप शिक्षित होकर इस चीजको अच्छा कैसे मानते हैं?

नरेन्द्र—अच्छे-बुरेकी बात मैंने नहीं कही—जाति मानता हूँ, यही कहा है।

विजया—अच्छा, दूसरी जातिकी बात जाने दीजिए। किन्तु जहाँ जाति एक है वहाँ भी क्या केवल जुदा धर्ममतके कारण ही विवाह नहीं हो सकता—यह आप कहना चाहते हैं? लेकिन आप काहेके हिंदू हैं? आपको तो जातिने बाहर कर दिया है। क्या आप समझते हैं कि आपके लिए भी किसी अन्य समाजकी कुमारी विवाहके योग्य नहीं है? आपको इतना अहंकार किस लिए है? और अगर आपका यही सच्चा मत है तो शुरूसे ही आपने यह बात क्यों

नहीं बता दी ! (कहते-कहते विजयाकी आँखोंमें आँसू भर आये और इसीको छिपानेके लिए उसने मुँह फेर लिया ।)

नरेन्द्र—(क्षणभर एकटक ताकते रहकर) आप खफा होकर जो कह रही हैं, वह तो मेरा मत नहीं है ।

विजया—निश्चय यही आपका सच्चा मत है ।

नरेन्द्र—मेरी परीक्षा करतीं तो आपको मालूम हो जाता कि यह मेरा न सच्चा मत है, न झूठा । इसके सिवा नलिनीके मामलेको लेकर क्यों आप वृथा कष्ट पा रही हैं ? मैं जानता हूँ कि उनका मन कहाँ अटका है और वह भी निश्चय ही समझ जायँगी कि मैं पृथिवीके दूसरे छोरको क्यों भाग जा रहा हूँ । मेरे जानेके लिए आप बेकार चिन्ता न करें—उद्विग्न न हों ।

विजया—बेकार ? नलिनीका अमत न होने पर भी क्या आप समझते हैं कि जहाँ आपकी खुशी हो वहाँ आप जा सकते हैं ?

नरेन्द्र—ना, नहीं जा सकता । आपकी नाराजीमें भी मेरा कहीं जाना नहीं हो सकता । लेकिन आप तो सभी बातें जानती हैं । मेरे जीवनकी साध भी आपसे छिपी नहीं है । विदेशमें शायद किसी दिन वह साध पूरी भी हो सकती है; लेकिन इस देशमें इतने बड़े निकम्मे दीन दरिद्रका रहना न रहना बराबर है । मुझे रोकिएगा नहीं ।

विजया—आप दीन-दरिद्र तो नहीं हैं । आपके सब है—इच्छा करते ही सब लौटा ले सकते हैं ।

नरेन्द्र—इच्छा करते ही अवश्य लौटा नहीं सकता; किन्तु आपने जो देना चाहा है वह मुझे याद है और हमेशा याद रहेगा । मगर देखिए, लेनेका भी एक अधिकार रहना चाहिए । वह अधिकार मुझे नहीं है ।

विजया—(उमड़ी हुई रुलाईको सँभालते-सँभालते, उत्तेजित स्वरमें ।) है क्यों नहीं, अवश्य है ! यह सम्पत्ति मेरी नहीं है, बापूजीकी है । और यह आप जानते हैं । नहीं तो हँसीमें भी आप उनके सर्वस्वपर दावा करनेकी बात जबानपर नहीं ला सकते । लेकिन मैं होती तो इतना कहकर ही न रह

जाती। वह जो कुछ दे गये हैं, उसपर जबर्दस्ती दखल कर लेती, कुछ भी न छोड़ती। (टेबिलपर सिर रखकर रोने लगती है।)

नरेन्द्र—नलिनीने ठीक ही समझा था विजया, लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया। मैं यह सोच ही नहीं सका कि मुझ जैसे एक बेकार, एक अक्षम आदमीकी किसीको जरूरत हो सकती है। लेकिन सचमुच ही अगर यह असंगत विचार तुम्हारे दिमागमें आया था तो तुमने एक बार हुक्म क्यों नहीं दिया? मेरे लिए तो इसका सपना देखना भी पागलपन है विजया।

[विजया मुखके ऊपर आँचल दबाकर उच्छ्वसित रोदनको रोकने लगी। नरेन्द्रने पीछे पैरोंकी आहट पाकर देखा, दयाल बाबू दर्वाजेके पास खड़े हैं। दयाल बाबू धीरे धीरे कमरेके भीतर आकर विजयाके आसनके एक सिरेपर बैठकर उसके सिरपर हाथ रखकर सान्त्वना देने लगे।]

दयाल—बेटी!

[विजयाने एक बार सिर उठाकर देखा। फिर पेटके बल पड़कर मुँह छिपाकर रोने लगी। दयालकी आँखोंसे भी आँसू टपक पड़े।]

दयाल—(स्नेहके साथ सिरपर हाथ फेरते फेरते) केवल मेरी ही गलतीसे–मेरे ही दोषसे यह भयानक अन्याय हो गया बेटी, केवल मैंने ही यह दुर्घटना घटाई। कल तुम लोगोंके चले जानेपर नलिनीसे मेरी यही बात हो रही थी। वह सब जानती थी। लेकिन किसने सोचा था कि नरेन मन ही मन केवल तुम्हें ही—किन्तु मैं ऐसा निर्बोध हूँ कि सब गलत समझकर तुम्हें उल्टी खबर देकर यह दुःख घरमें बुला लाया। अब शायद इसका कोई प्रतिकार नहीं है? (वैसे ही विजयाके सिरपर हाथ फेरते फेरते) क्या इसका कोई और उपाय नहीं हो सकता विजया?

विजया—(वैसे ही मुँह छिपाये हुए, उखड़े गलेसे) नहीं दयाल बाबू, मरणके सिवा मेरे छुटकारेका अब और रास्ता नहीं है।

दयाल—छी बेटी, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।

विजया—मैं वचन दे चुकी हूँ दयाल बाबू। वे लोग उसी बातपर भरोसा

करके सब तैयारियाँ पूरी कर चुके हैं। इस वचनको अगर मैं तोड़ूँ तो लोगोंको मुँह कैसे दिखाऊँगी ? अब सिर्फ बाकी है मौत—

[कहते कहते फिर उसका गला रुँध जाता है। दयालकी आँखोंसे भी आसू गिरने लगते हैं।]

दयाल—(हाथसे आँसू पोंछकर) नलिनीने कहा कि विजयाने जबानसे 'हाँ' कह दिया है, दस्तखत कर दिये हैं, यह ठीक है। लेकिन इनमेंसे किसी काममें उसके हृदयने साथ नहीं दिया। उसकी वह मुँहकी बात ही बड़ी होगी मामाजी, और हृदय मिथ्या हो जायगा ? उसकी मामीने कहा—उसके मा नहीं है, बाप नहीं है—अकेली लड़की है—आचार्य होकर तुम इतना बड़ा पाप न करो। जो देवता हृदयमें वास करते हैं, वह इस अधर्मको नहीं सहेंगे। रातभर मेरी आँखोंमें नींद नहीं आई, केवल नलिनीकी बात याद आती रही कि मुँहकी बात ही बड़ी होगी और हृदय कुछ भी नहीं ? सवेरा होते ही भागा कलकत्ते—नरेनके पास—

नरेन्द्र—आप मेरे पास गये थे ?

दयाल—हाँ। जाकर देखा, तुम डेरे पर न थे। पता लगाने गया तुम्हारे दफ्तरमें। उन्होंने भी कहा, तुम नहीं आये। विफल होकर लौट आया। लेकिन आशा नहीं छोड़ी। मनमें कहा—जाऊँ विजयाके पास, जाकर उससे सब बातें कहूँगा—

परेश—(कमरेके भीतर गर्दन बढ़ाकर) माजी, दो बज गये। तुम्हारे खाये विना हम सब लोग भी नहीं खा सकते।

[सुनकर विजया व्यस्त हो उठती है।]

विजया—दयाल बाबू, आज आपको यहीं नहाना-खाना होगा।

दयाल—नहीं बेटी, आज मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन नहीं कर सकूँगा। वे लोग सब मेरी राह देख रहे होंगे।—नरेन, तुमको भी चलना पड़ेगा। कल विना भोजन किये चले आये हो, इसका उन्हें अभी तक दुःख बना है। आओ, चलो मेरे साथ।

[नरेन्द्र उठ खड़ा होता है। विजया उसे इशारेसे एक तरफ बुलाकर ऐसी धीमी आवाजमें कहती है कि दयाल नहीं सुन पाते—]

विजया—मुझे जनाये बिना कहीं जाइएगा तो नहीं ?

नरेन्द्र—ना। जानेके पहले तुमसे कह जाऊँगा।

विजया—भूल तो न जाइएगा ?

नरेन्द्र—(हँसकर) भूल जाऊँगा ?—चलिए दयालबाबू, हम लोग चलें।

दयाल—चलो। अच्छा बेटी, चलता हूँ।

[एक ओरसे दयाल और नरेन्द्र और दूसरी ओरसे विजया जाते हैं।]

पञ्चम अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—विजयाके बैठनेका कमरा।

[परेश प्रवेश करता है। चौड़ी पाड़की साड़ी और छींटका कुर्ता पहने है। गलेमें चुनी हुई चादर पड़ी है, लेकिन पैर नंगे हैं।]

परेश —माजी, तीन-चार बज गये; लेकिन पालकी तो अब तक नहीं आई ? मेरी मा क्या कहती है, जानती हो माजी ? कहती है, बूढ़े दयाल बाबू सठिया गये हैं—न्योता देकर भूल गये।

विजया—तुझे, जान पड़ता है, बड़ी भूख लगी है परेश ?

परेश —हाँ बड़ी भूख लगी है।

विजया—अभी तक कुछ खाया नहीं ?

परेश—नहीं। सिर्फ सवेरे जरा सी लैया खाई थी। फिर माने कहा कि न्योतेमें खाना बड़ी देरमें मिलेगा, दो कौर भात खा ले। इसीसे— देखो माजी, यह इतना-सा खाया है !

[इतना कहकर उसने हाथसे परिमाण दिखा दिया। फिर पूछा—]

परेश—तुमको भूख नहीं लगी माजी ?

विजया—(जरा हँसकर) मुझको भी बड़ी भूख लगी है रे।

(परेशकी माका प्रवेश)

परेशकी मा—भूख क्यों न लगेगी बिटिया रानी ! समय अब कहाँ रह गया है ! बूढ़ेने यह किया क्या, बताओ तो—भूल तो नहीं गया ? आदमी भेजकर पता लगाऊँ ?

विजया—छी छी ! आदमी भेजनेकी जरूरत नहीं है परेशकी मा। अगर सचमुच ही भूल गये होंगे तो बहुत लज्जित होंगे।

परेशकी मा—लेकिन न्योता खानेकी आशामें तुम्हारा परेश तो राह

ताकते-ताकते परेशान हो गया। जान पड़ता है, कोई हजार दफे नदीके किनारे जाकर देख आया है कि पालकी आ रही है या नहीं।—जा परेश, एक दफा और जाकर देख। (परेश जाता है) लेकित सचमुच ही उनकी समझ देखकर मुझे अचरज हो रहा है। कल उतनी देरसे तो डाक्टर बाबूको लेकर घर गये और फिर कई घंटेके बाद ही क्या देखती हूँ, बूढ़ा लाल्टेन लिये खुद हाजिर है! पूछने लगा—परेशकी मा, तुम्हारी माजी कहाँ हैं? मैंने कहा—ऊपर अपने कमरेमें ही हैं। लेकिन इतनी रातको क्यों कष्ट किया आपने? बोले—परेशकी मा, कल दोपहरको मेरे यहाँ तुम लोग भोजन करना—तुम, परेश, कालीपद और मेरी बेटी विजया। मैं निमंत्रण देने आया हूँ। मैंने पूछा—निमंत्रण काहेका है आचार्यजी, बोले—उत्सव है।—काहेका उत्सव है बिटिया रानी?

विजया—मुझे नहीं मालूम परेशकी मा। मुझसे तो आकर कहा कि कल दोपहरको मेरे यहाँ तुमको चलना होगा बेटी। पालकी-कहार भेज दूँगा, पैदल तुम जा न सकोगी। लेकिन तब तक कुछ खाना-पीना नहीं। पूछा—क्यों दयाल बाबू? बोले—मैंने व्रत रखा है। तुम जब पदार्पण करोगी, तभी वह व्रत सफल होगा। सोचा, मंदिर ही तो है, शायद कुछ किया होगा। लेकिन जो जानती कि ऐसा होगा तो मैं निमंत्रण स्वीकार ही न करती परेशकी मा।

(रासबिहारीका प्रवेश)

रास०—यह क्या! अभी तक तुम नहीं गई बेटी? चार बज गये!

परेशकी मा—पालकी भेजनेको कहा था उन्होंने, सो अभी तक नहीं आई।

रास०—उनके सभी काम ऐसे होते हैं। पालकी अगर उनको नहीं मिली थी तो मेरे पास खबर क्यों नहीं भेजी? मैं पालकीका इंतिजाम कर देता। दोपहरको खिलाना था, सो शाम कर दी। बड़ा ढिल्लड़ आदमी है। इसीलिए विलास बिगड़ा करता है। उधर मुझपर भी बहुत जोर डाल गये हैं—सन्ध्याके बाद आना ही होगा।

(दौड़ते हुए परेशका प्रवेश।)

परेश—पालकी आ गई माजी।

[रासबिहारीको देखते ही वह संकुचित हो उठता है।]

रास०—कहता क्या है रे ! आ रही है ! तेरे लिए तो मजे हैं ! देखना परेश, इतना न खाना कि तुझे ही डोलीमें डालकर लाना पड़े ! (विजयासे) जाओ बेटी, अब देर न करो–दिन बिल्कुल नहीं रह गया है। जाकर पालकी भेज देना। मुझे भी जाना होगा। विना गये तो प्राण बचेंगे नहीं, बेहद नाराज होगा, बुरा मानेगा। वह तो यह नहीं समझता कि दो दिन बाद मेरे घरमें भी उत्सव है—कामकी भीड़के मारे दम लेनेकी फुर्सत नहीं है मुझे। लेकिन मेरी बात कौन सुनता है ! 'रासबिहारी बाबू, एक बार घरमें चरण-रज डालनी ही होगी !' अतएव गये विना बनता नहीं। मगर कह देना, रात हो गई तो फिर मैं न जा सकूँगा। जाओ बेटी, तुम लोग। मैं जाकर तब तक मिस्त्रीके कामका हिसाब देखूँ। लगभग ६०–७० आदमी सवेरेसे शाम तक जुटे रहते हैं। मकान क्या है, एक महल है, कामकी क्या कोई हद है ! जो मेहमान आवें वे यह न कह सकें कि तैयारीमें कहीं कोई कसर है।

[इतना कहकर चले जाते हैं। उनके बाद और सबका भी प्रस्थान।]

द्वितीय दृश्य

स्थान—दयालके घरकी बाहरी बैठक।

[तरह तरहकी मांगलिक सजावट है। बहुत-से लोग आ-जा रहे हैं। कलरव छाया हुआ है। उसके बीचमें पालकीके कहारोंकी हुमक सुन पड़ी। क्षणभर बाद विजया प्रवेश करती है। उसके पीछे परेश, कालीपद और परेशकी मा हैं। दयाल दूसरी ओरसे दौड़े हुए आते हैं।]

दयाल–(बड़े उल्लाससे) यह लो, मेरी बेटी आ गई।

विजया—(हँसते हुए मुखसे) आपकी व्यवस्था भी खूब है ! पालकी भेजनेमें इतनी देर कर दी—हम सब भूखों मर रहे हैं। यही शायद आपका दोपहरका निमन्त्रण है !

दयाल—आज तो तुमको भोजन नहीं करना है बेटी। कष्ट थोड़ा-सा तो होगा ही। भट्टाचार्यजीकी आज्ञा आज तो माननी ही पड़ेगी। नरेन तो भूखके मारे निर्जीव-सा पड़ा है।—क्यों रे परेश, तू क्या कहता है !

[एक आदमी व्यस्त भावसे आता है। उसके हाथमें चूनर और सोहागकी चीजें वगैरह सब एक कागजमें बँधी हुई हैं।]

आदमी—(दयालसे) दान-सामग्री और सोहागकी सब चीजें आ गईं हैं। मैंने सजानेके लिए कह दिया है। वर और कन्याके पहननेकी धोती वगैरह सब सामान यह है। नाईको हल्दीसे रँगने और सुखानेके लिए दे दूँ?

दयाल—हाँ जाकर दे दो। कितने बजे हैं? संध्याके बाद ही तो लग्न है। शायद अब अधिक देर नहीं है। (विजयासे) भाग्यसे अच्छी लग्न, दिन-मुहूर्त सब मिल गया। न मिलता तो भी आज विवाह करना होता, यह किसी तरह नहीं टल सकता। मगर वह तो भगवानकी कृपासे सब ठीक ठाक मिल गया। इसीसे तो भट्टाचार्यजी हँसकर कह रहे थे कि आजका मुहूर्त जैसे खासकर विजयाके लिए ही पत्रामें लिखा गया था।—आज तुम्हारा ब्याह है बेटी।

विजया—आज मेरा ब्याह है?

दयाल—इसीसे तो आज हमारा यह आनन्दका आयोजन है, महोत्सवकी धूम है।

विजया—(करुण कण्ठसे) आप क्या मेरा ब्याह हिंदू-रीतिसे करेंगे?

दयाल—हिन्दू-विवाह क्या विवाह नहीं है बेटी? किन्तु साम्प्रदायिक मतवाद मनुष्यको एसा भोंदू बना देता है कि कल तीसरे पहरभर सोच-सोचकर भी मैं इस तुच्छ बातका कोई समाधान नहीं खोज सका। लेकिन नलिनीने दमभरमें मुझे समझा दिया—सारा संशय मिटा दिया। बोली—उनके पिता जिसके हाथमें उन्हें दे गये हैं उसीके हाथमें उन्हें दीजिए। नहीं तो छल करके अगर अपात्रको दान करोगे, तो तुम लोग घोर अधर्मके भागी होओगे। और फिर मनका मिलना ही तो सच्चा ब्याह है, नहीं तो ब्याहके मंत्र संस्कृतमें हों या भाषामें, उन मंत्रोंका उच्चारण भट्टाचार्य करावें या मंदिरके आचार्य, इससे कुछ आता-जाता नहीं। इतनी बड़ी जटिल समस्या जैसे एकदम हल हो गई विजया। मन-ही-मन कहा—भगवान्! तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। इनका ब्याह मैं चाहे जिस मतसे क्यों न करूँ, तुम्हारे निकट अपराधी न होऊँगा, यह मैं निश्चय जानता हूँ।

एक भद्रपुरुष—निश्चय निश्चय। बिलकुल सच बात है।

दयाल—(क्षणभर चुप रहकर) तुम नहीं जानती बेटी कि नरेन्द्र तुम्हें कितना चाहता है। तो भी वह ऐसा लड़का है कि तुम्हारे सिरपर झूठका बोझ लादकर तुम्हें भी ग्रहण करनेको राजी न होता। आदिसे अन्ततक उसके सब कामोंपर गौर करके देखो न विजया।

[विजया चुपचाप सिर झुकाये स्थिर भावसे खड़ी रहती है। नलिनी दौड़ती हुई आकर उसका हाथ पकड़ती है।]

नलिनी—वाह, मुझे अभी तक खबर ही नहीं मिली! कामकी भीड़में कुछ मालूम ही न हुआ। ऊपर चलो भई, तुमको सजानेका भार आज मेरे ऊपर पड़ा है। चलो जल्दी।

[इतना कहकर वह विजयाको खींचकर भीतर चली जाती है। साथमें परेश, परेशकी मा और कालीपद जाते हैं। नेपथ्यमें शंख बज उठता है। भट्टाचार्य-जीका प्रवेश।]

भट्टा०—लग्न समुपस्थित है। आप लोग अनुमति दीजिए, शुभकार्य आरंभ करूँ।

सब लोग—(एक साथ) हम सम्पूर्ण अन्तःकरणसे सम्मति देते हैं भट्टाचार्य-जी, शीघ्र ही शुभकर्म आरंभ कीजिए।

भट्टा०—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[गाँवके किसान-खेतिहर नाना तरहके लोग अनेक कामोंसे आते-जाते देख पड़ते हैं और भीतर कलरव सुनाई देता है।]

दयाल—मेरे भी मनमें संशय आया था। एक बड़ी बात यह है कि विजयाने उन लोगोंसे हामी भर ली है—वचन दिया है। नलिनीने कहा—यह बड़ी बात नहीं है मामाजी। विजयाके अन्तर्यामीने उस हामीका साथ नहीं दिया। तो भी तुम क्या उसके हृदयके सत्यको नाँघकर उसकी जबानी स्वीकृतिको ही महत्त्व दोगे? सुनकर अवाक् होकर मैं उसकी ओर ताकने लगा। वह कहने लगी—केवल मुँहसे निकलनेके कारण ही कोई बात सत्य नहीं बन जाती, तो भी जो लोग उसीको सबके उपर स्थान देते हैं, वे ऐसा सत्यके कारण नहीं करते—वे सत्य भाषणके दंभको प्यार करनेके कारण ऐसा करते हैं। आप सब लोग शायद नहीं जानते, इन भट्टाचार्य महाशयके बाप-दादे राय-वंशके

कुल-पुरोहित थे। फिर बहुत दिनोंके बाद आज उसी वंशकी कन्याके विवाहमें पुरोहितका काम करनेके लिए मैं इन्हें पा गया—यह मेरे लिए बड़ी सान्त्वनाकी बात है। सबके आशीर्वादसे यह विवाह कल्याणमय हो, निर्विघ्न हो—यही आप लोगोंके निकट मेरी प्रार्थना है।

सब लोग—हम आशीर्वाद करते हैं कि वर और कन्याका कल्याण हो।

दयाल—कन्या-दान करने बैठी हैं विजयाकी दूरके नातेकी एक बुआ—

एक भद्रपुरुष—कौन—कौन? ईश्वरकाली घोषालकी विधवा?

दयाल—हाँ वही। क्लेशके साथ मनमें यह खयाल आता है कि आज कहीं वनमाली बाबू जीवित होते! अपनी एकमात्र कन्या विजयाको नरेन्द्रनाथके हाथमें सौंपनेके लिए ही उन्होंने नरेन्द्रको पढ़ाया-लिखाया और आदमी बनाया था। दयामयके आशीर्वादसे वह सच्चा मनुष्य बना है। वनमाली बाबूके पढ़ा-लिखाकर मनुष्य बनाये हुए नरेन्द्रके हाथमें ही हम उनकी कन्या सौंप रहे हैं। वनमाली बाबूकी अभिलाषा आज पूरी हुई।

सब लोग—हम फिर आशीर्वाद देते हैं—ये सुखी हों।

[अन्तःपुरसे शंखध्वनि और कलरव सुन पड़ता है।]

दयाल—(आँखें मूँदकर) मैं भी भगवानसे प्रार्थना करता हूँ कि हम लोगोंकी शुभ इच्छा सफल हो।

एक वृद्ध—हम सब आपको भी आशीर्वाद देते है दयाल बाबू। सुना था, रासबिहारीके लड़के विलासके साथ विजयका ब्याह होगा। हम ठहरे प्रजाजन। सुनकर भयसे मरे जा रहे थे। वह कैसा पाजी है—

दयाल—(सलज्ज भावसे हाथ उठाकर) ना ना ना। ऐसी बात मत कहिए मजूमदारजी। प्रार्थना करता हूँ उनका भी मंगल हो।

वृद्ध—मंगल होगा? खाक होगा। गड्ढेमें पड़ें। मेरे तालाबके—

दयाल—ना ना ना—ऐसी बात न कहनी चाहिए—न कहनी चाहिए—किसीके भी लिए। करुणामय भगवान सभीका भला करें।

वृद्ध—किन्तु वह बूढ़ा दढ़ियल—

[धीरगंभीर चालसे रासबिहारी बाबूका प्रवेश। सब सिटपिटाकर उठ खड़े होते हैं।]

सब लोग—आइए, आइए, आइए, पधारिए रासबिहारी बाबू। हम सभी आपके शुभगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

रास०—(तिर्छी नजरसे दयालकी ओर देखकर) आज मामला क्या है, बताओ तो दयाल? दर्वाजेपर केलेके स्तंभ हैं, कलश रखे हैं, घरके भीतर शंखका शब्द अभी अभी सुना—तैयारी तो कुछ बुरी नहीं की—लेकिन यह काहेकी तैयारी है? जरा सुनूँ तो!

दयाल—(भय और विनयके साथ) आज विजयाका ब्याह है भाई।

रास०—यह राय किसने दी, जरा सुनूँ?

दया—किसीने नहीं भाई। करुणामयकी—

रास०—हूँ! करुणामयकी! पात्र कौन है? जगदीशका लड़का वही नरेन?

दयाल—तुम तो—आप तो जानते हैं कि वनमाली बाबूकी चिरकालकी यही इच्छा थी--

रास०—हूँ, जानता क्यों नहीं। वनमालीकी लड़कीका ब्याह क्या अन्तको हिन्दू रीतिसे ही किया गया?

दयाल—आप जानते हैं कि असलमें सभी विवाह-अनुष्ठान एक हैं।

रास०—लड़की क्या यह भी भूल गई कि उसके बापको हिन्दुओंने गाँवसे निकाल बाहर किया था?

[इस समय फिर अन्तःपुरसे शंखध्वनि और तरह-तरहका कलरव सुनाई देने लगा।]

दयाल—शुभकार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया। अब मनमें कोई ग्लानि न रखकर आशीर्वाद दो भाई, कि वर-वधू दोनों सुखी हों, धर्मात्मा हों और चिरजीवी हों।

रास०—हूँ। मुझसे कहकर भी यह कर सकते थे दयाल। तब यह छल-चातुरी न करनी होती। इसीपर मुझे सबसे अधिक घृणा है।

[रासबिहारी जानेको उद्यत होते हैं। इतनेमें नलिनी कहींसे दौड़कर आती है।]

नलिनी—(मचलनेके सुरमें) वाह! आप क्या ब्याहके घरसे मुँह मीठा किये विना ही चले जायँगे? यह न होगा। आप खा-पीकर तब यहाँसे जा सकेंगे रासबिहारी मामा। कितने कष्टसे निमन्त्रण देकर मैंने आपको यहाँ बुलवाया है।

रास०—दयाल, यह लड़की कौन है?

दयाल—मेरी भानजी नलिनी।

रास०—बड़ी ढीठ लड़की है। (प्रस्थान)

दयाल—(रासबिहारीकी ओर नजर किये हुए) हृदयमें बड़ी व्यथा पाई है! भगवान् उनके क्षोभको दूर करें।—गांगुली महाशय, चलिए, हम लोग चलकर अभ्यागतोंके खाने-पीनेकी व्यवस्था जरा देखें। आजके दिन कहीं भी कोई अपराध न होने पावे।

पूर्ण गांगुली—प्रजापतिके आशीर्वादसे कहीं किसी तरहकी त्रुटि नहीं है दयाल बाबू—सभी व्यवस्था ठीक है। (प्रस्थान)

दयाल—(इशारेसे वर-वधूको दिखाकर) नलिनी, इन लोगोंको भी कुछ खाने-पीनेको देना होगा बेटी! जाओ, अपनी मामीसे जाकर कहो।

नलिनी—जाती हूँ मामाजी।

दयाल—मैं भी चलता हूँ, चलो।

(दोनोंका प्रस्थान।)

[क्षणभरके लिए रंगमंचपर खाली वर और वधू, दोनों रह जाते हैं।]

नरेन्द्र—(विजयासे) गंभीर होकर क्या सोच रही हो, बताओ तो भला?

विजया—(हँसकर) सोचती हूँ तुम्हारी दुर्गतिकी बात। वह जो माइक्रोस्कोप बेचकर मुझे ठग ले गये थे, उसका फल यह हुआ कि अन्तको मेरे ही साथ ब्याह करके उसका प्रायश्चित करना पड़ा!

नरेन्द्र—(गलेकी माला दिखाकर) उसका यह फल है! यह क्या सजा है?

विजया—हाँ वही तो। मगर सजा क्या तुम्हें कुछ कम मिली है?

नरेन्द्र—सो मिलने दो। लेकिन देखो, बाहर यह बात किसीके आगे प्रकट न करना। नहीं तो दुनिया भरके लोग इसी लालचसे तुम्हारे हाथ माइ-क्रोस्कोप बेचने दौड़े आवेंगे। (दोनोंकी हँसी)

नलिनी—(प्रवेश करके) आओ भाई मिसेस मुखर्जी और आइए डा० मुखर्जी। मामीजी आप लोगोंका भोजन परोसे लिये बैठी हैं।—मगर यह तो बताओ, इतने जोरकी हँसाई क्यों हो रही थी?

विजया—(हँसकर) यह जाननेकी तुम्हें जरूरत नहीं—

(पर्दा गिरता है।)

समाप्त